शोकमपनुदतीति (अः) शोकापनोदः

॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥

॥ श्रीमते वानाद्रियोगिने नमः ॥

पञ्च रहस्य

(अर्थपञ्चक प्रपन्न परित्राण, प्रमेयशेखर
नवरत्नमाला, निगमनपड़ि)

भाषानुवादसहित

प्रकाशक :-

भक्तिसार रामानुजदास

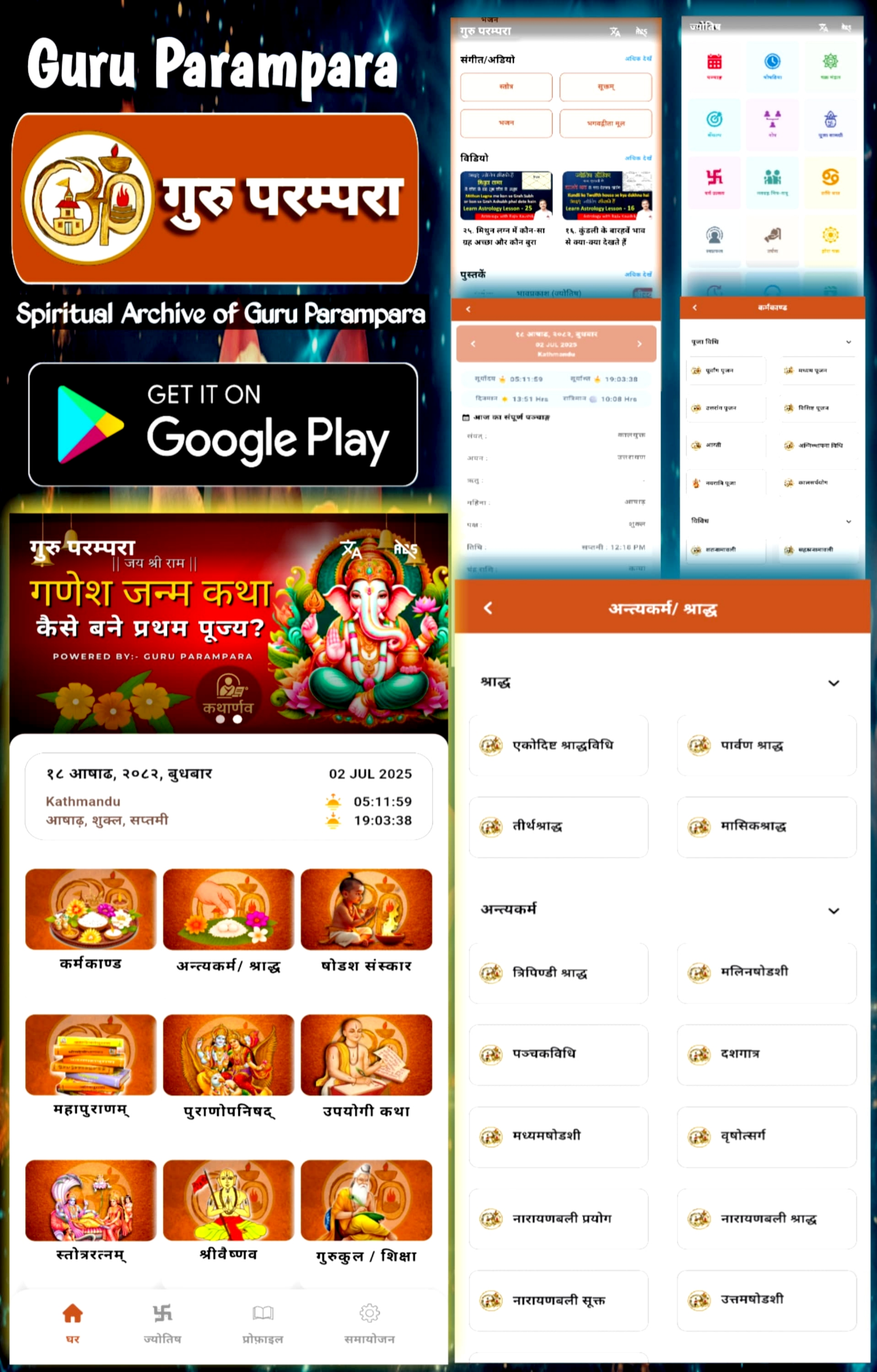
Guru Parampara
गुरु परम्परा
Spiritual Archive of Guru Parampara
GET IT ON
Google Play
गुरु परम्परा
|| जय श्री राम ||
गणेश जन्म कथा
कैसे बने प्रथम पूज्य?
POWERED BY:- GURU PARAMPARA
कथार्णव
१८ आषाढ, २०८२, बुधबार
02 JUL 2025
Kathmandu
आषाढ़, शुक्ल, सप्तमी
05:11:59
19:03:38
कर्मकाण्ड
अन्त्यकर्म/ श्राद्ध
षोडश संस्कार
महापुराणम्
पुराणोपनिषद्
उपयोगी कथा
स्तोत्ररत्नम्
श्रीवैष्णव
गुरुकुल / शिक्षा
घर
ज्योतिष
प्रोफ़ाइल
समायोजन
गुरु परम्परा
संगीत/अडियो
विडियो
पुस्तकें
ज्योतिष
कर्मकाण्ड
अन्त्यकर्म/ श्राद्ध
श्राद्ध
एकोदिष्ट श्राद्धविधि
पार्वण श्राद्ध
तीर्थश्राद्ध
मासिकश्राद्ध
अन्त्यकर्म
त्रिपिण्डी श्राद्ध
मलिनषोडशी
पञ्चकविधि
दशगात्र
मध्यमषोडशी
वृषोत्सर्ग
नारायणबली प्रयोग
नारायणबली श्राद्ध
नारायणबली सूक्त
उत्तमषोडशी

"नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते"

के

अनुसार श्रीरामानुज सम्प्रदाय के रहस्यार्थों का ज्ञान

श्री वैष्णवों को सुलभ बनाने के उद्देश्य से प्रकाशित

आश्विन संक्रान्ति

ॐ

वि० सं० २०५८

१०००/ प्रतियां

मूल्य :- गैंडाकोट, नवलपरासी में प्रस्तावित

श्रीरामानुज मठ की स्थापना हेतु यथाशक्ति सहयोग

मुद्रक :- मनीराम प्रिंटिंग प्रेस, शास्त्रीनगर, अयोध्या।

※ निवेदन ※

।। श्रीमते रामानुजाय नमः ।।

अखिल दुरित पुञ्जध्वंसनं देहभाजाम्,
भव जल निधि पोतं पावनं पावनानाम् ।
परम पुरुषधाम प्रापकं स्वाश्रितानाम्,
यतिपति पद पद्मं श्रेयसे संश्रयामि ।।

श्री भाष्यकार रामानुज स्वामी जी के द्वारा विशेष रूप में संवर्धित होने के कारण श्री सम्प्रदाय को रामानुज सम्प्रदाय के नाम से भी जाना जाता है। रामानुज स्वामी जी का अवतार ही सनातन धर्म की अभिवृद्धि के लिए हुआ, इसीलिए कहा गया है कि–

पुण्याम्भोज-विकासाय पापध्वान्तक्षयाय च ।
श्रीमानाविरभूत् भूमौ रामानुज दिवाकरः ।।

रामानुज सम्प्रदाय में भगवान के भक्तों को भागवत कहा जाता है। केवल शंख चक्रादि धारण कर वैष्णव मात्र बनने से वैष्णवता तो आती नहीं, वैष्णवता की प्राप्ति के लिए तो रहस्य ग्रन्थों का ज्ञान एवं तदनुरूप आचरण होना अत्यन्त आवश्यक है। इस विषय में कहा भी गया है–

अर्थपञ्चक तत्वज्ञाः पञ्चसंस्कार संस्कृताः ।
आकारत्रय सम्पन्नास्ते वै भागवता स्मृताः ।।

अर्थपञ्चक के तत्व को जानने वाले, पञ्चसंस्कार सम्पन्न, अनन्यार्हशेषत्व-अनन्यशरणत्व-अनन्यभोग्यत्व रूप स्वरूप सम्पन्न भागवत कहे जाते हैं।

स्वरूपज्ञ होने के लिए अर्थपञ्चक आदि का ज्ञान नितान्त अपेक्षित होने के कारण संप्रति अप्राप्य पाँच रहस्य ग्रन्थों का प्रकाशन किया जा रहा है । पंच रहस्य में संगृहीत पाँच रहस्य ग्रन्थों में से अर्थपञ्चक, प्रपन्नपरित्राण, प्रमेय शेखर, नवरत्नमाला, ये चार रहस्य ग्रन्थ श्रीलोकाचार्य स्वामी जी के द्वारा अनुगृहीत हैं । श्री कृष्ण पाद सूरि (पेरिय वाच्चान पिल्लै) के द्वारा अनुगृहीत रहस्य निगमनपड़ि ग्रन्थ है । उपर्युक्त पाँचों ग्रन्थों का प्रकाशन इस पुस्तक में होने से यह पञ्च रहस्य ग्रन्थ है ।

१- अर्थपञ्चक में स्वस्वरूप, पर स्वरूप, पुरुषार्थ स्वरूप, उपाय स्वरूप, विरोधि स्वरूप इन पाँच प्रकार के स्वरूपों का पंच रूपात्मक वर्णन है ।

२- निरूपाधिक बन्धु साक्षात् सर्वेश्वर भगवान हैं । सांसारिक बन्धुत्व तो सोपाधिक है इसे प्रपन्न परित्राण में बताया गया है ।

३- प्रपन्न भगवद् भक्तों को नित्य कैंकर्य में पहुँचने के लिए अर्चिरादि मार्ग का सूक्ष्मता से वर्णन प्रमेय शेखर में किया गया है ।

४- "पद्मपत्रमिवाम्भसा" के अनुसार संसार में रहते हुए हमें क्या अनुसन्धान करना चाहिए इसका विवेचन नवरत्न माला में है ।

५- मनन करने वाले का उद्धार करने वाले को मन्त्र कहते हैं, श्री वैष्णवों के लिए मनन अनुष्ठान करने योग्य तीनों मन्त्र ही हैं, इन मन्त्रों का सार अतिसूक्ष्मता से निगमन-पड़ि ग्रन्थ में प्रतिपादन किया गया हैं ।

प्रायः समस्त धार्मिक ग्रन्थों में आत्मा का क्या स्वरूप है, परमात्मा किसे कहते हैं, ब्रह्म अथवा मोक्ष को प्राप्त

होने के क्या उपाय हैं, मुझे क्या करना चाहिए, कौन उनकी प्राप्ति होने नहीं देता इन्हीं विषयों का विवेचन रहता है। समस्त शास्त्रों में इन्हीं बातों का भिन्न-भिन्न शैली के साथ विशद रूप में वर्णन है।

प्राप्यस्य ब्रह्मणो रूपं प्राप्तुश्च प्रत्यगात्मनः।
प्राप्त्युपायं फलं प्राप्तेस्तथा प्राप्ति विरोधि च ॥
वदन्ति सकला वेदाः सेतिहास पुराणका।
मुनयश्च महात्मानो वेद वेदार्थ वेदिनः ॥

इस तरह समस्त अध्यात्म विषय को प्रकृत पञ्च रहस्य में संक्षेप एवं सुगम रूप से प्रतिपादन किया गया है इस ग्रन्थ का प्रकाशन वि० सं० २०१९ में श्रेष्ठी प्रवर श्री रामदयाल सोमानी के द्वारा हुआ था, जो इस समय अप्राप्य है।

संप्रति अप्राप्य एवं श्री वैष्णोंवों को अत्यन्त आवश्यक इस ग्रन्थ का प्रकाशन श्री भक्तिसार रामानुजदासजी के द्वारा आचार्य कैंकर्य के रूप में किया गया। अकिंचन भागवत होते हुए भी प्रकाशक का मुक्तिनाथ धाम से प्रवाहित होने वाली कृष्णागण्डकी (नारायणी) के तट पर एक संस्था स्थापित कर श्री रामानुज सम्प्रदाय की अभिवृद्धि का महान् उद्देश्य है।

"गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः" के अनुसार प्रूफ संशोधन में मानवोचित अनवधानतावश अवशिष्ट त्रुटियों के प्रति क्षमा याचना के साथ प्रकृत पुस्तक का अध्ययन एवं मनन मनोयोग पूर्वक करने हेतु समस्त सनातन धर्मानुरागी भगवद्भक्तों से निवेदन करता हूँ।

निवेदक :- चतुर्भुज अधिकारी
नेपाली मन्दिर, विभीषण कुण्ड, अयोध्या

॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥

॥ श्रीमद्वरवरमुनये नमः ॥ श्रीमते वानाद्रियोगिने नमः ॥

विनम्र अनुरोध

श्रीमच्छठारि कलिजिद्यतिराज सौम्य-
जामातृ वानगिरियोगि पदाब्ज भक्तम् ।
श्रुत्यन्त युग्म सुखबोधन संप्रवीणम्
रामानुजं मुनिवरं गुरुमाश्रयामः ॥

श्रीमद्विशिष्टाद्वैत दर्शन का नाम श्री सम्प्रदाय भी है, इसी सम्प्रदाय को रामानुज सम्प्रदाय के नाम से जाना जाता है। श्री रामानुज सम्प्रदाय में दीक्षित होने वाले साधकों को श्रीभाष्यकार रामानुज स्वामीजी महाराज के सम्बन्ध मात्र से परम पुरुषार्थ की प्राप्ति होती है, इस अभिप्राय को हृदयङ्गम कर अनेकों आचार्यों ने रामानुज स्वामीजी के विषय में इस तरह वर्णन किया है।

केचित् कर्मादि योगेषु विद्वांसो निरता जनाः ।
वयं तु यतिराजस्य पाद पद्मैक संश्रयाः ॥
भोगैश्वर्य पराः केचित् केचित् कैवल्यमीप्सवः ।
वयन्तु शृंखलालग्नाः रामानुज दयानिधे ॥
त्वत्पादाम्भोजमाश्रित्य निखिलोपाय वर्जिताः ।
तरिष्यामोऽञ्जसा नूनं मृत्यु संसारसागरम् ॥

स्वपदाम्बुज संश्रित पापहरम्
सकल श्रुतिसार यथार्थकरम् ।
जयनादि विनाशन दण्डधरम्
प्रणमामि यतीश्वरमादिगुरुम् ॥

न योगो न यागो न वा तन्त्र मन्त्रो
न हि ज्ञान दाने न भक्ति प्रपत्तिः ।
तथाप्यात्मलब्धौ न सन्देह गन्धो
बलं मे महद् भाष्यकारानुबन्धः ॥

यस्य मुखस्था यतिपति सूक्तिः
तस्य करस्था विलसति मुक्तिः ।
नरके पतितं नव नव युक्तिः
नहि रक्षति सामान्य निरुक्तिः ।

न चेद्रामानुजेत्येषा चतुरा चतुरक्षरी ।
कामवस्थां प्रपद्यन्ते जन्तवो हन्तमादृशाः ॥
तृणीकृत विरिञ्च्यादि निरंकुश विभूतयः ।
रामानुजपदाम्भोज समाश्रयण शालिनः ॥

इस तरह सर्वत्र मुक्त कण्ठ से प्रशंसित श्रीभाष्यकार रामानुज स्वामीजी महाराज की असीम अनुकम्पा से सप्त विंशतितम पीठाधिपति श्रीवानमामलै रामानुज जीयर स्वामी जी महाराज के कृपापात्र अयोध्यास्थ स्वर्गद्वार श्रीतोताद्रिमठ के संस्थापक श्री स्वामी अनन्ताचार्य स्वामीजी महाराज की कृपा से दास को शरणागत होने का सौभाग्य मिला ।

अस्मदाचार्य श्री स्वामी अनन्ताचार्यजी महाराज की शिष्या कृष्णा रामानुज दासी तथा उनकी पुत्री आण्डाल रामानुज दासी की असहाय अवस्था के कारण श्रीस्वामीजी महाराज ने दास को निर्देशित किया कि "तुम असहाय इन दोनों की सेवा करो, एक संस्था की स्थापना करना, तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा, तुम्हें श्रेयः समृद्धि की प्राप्ति हो।" इस तरह आचार्य की आज्ञा के अनुसार जीवन पर्यन्त उन दोनों की सेवा किया, प्रारब्ध अवशेष रहने के कारण पारिवारिक बन्धन में बंधा, अब भगवत्कृपा से वैराग्य उत्पन्न हुआ। इस वृद्धावस्था में एक संस्था की स्थापना करने का संकल्प मनमें प्रबल रहा। उसी संकल्प को प्रारम्भ करने के लिए प्रारम्भिक रूप में प्रकृत "पञ्च रहस्य" का प्रकाशन किया जा रहा है। यह भगवद् भागवत आचार्य मुखोल्लासार्थ है।

आचार्य की आज्ञा के अनुसार नेपाल में श्रीमुक्तिनाथ धाम जाने के रास्ते में गैंड़ाकोट नवलपरासी जिले में श्री नारायणी नदी के तट पर श्रीरामानुज मठ की स्थापना के लिए १ कठ्ठा जमीन पहले ही सहयोगियों की सहायता से खरीद लिया गया था। जमीन क्रय करने के लिए सहयोग देने वालों का नाम इस प्रकार है।

१-	श्रीमती कृष्णा रामानुज दासी	५०१०१/-
२-	,, आण्डाल ,,	५०१०१/-
३-	,, खगेन्द्र आमाजी रजौरे	५०१०१/-
४-	,, सीता आमाजी रजौरे, जाजरकोट	५०१०१/-

श्री रामानुज मठ के निर्माण हेतु सहयोग देने वालों का नाम शिला लेख में अंकित कर मठ में रखने की प्रस्तावना है।

श्री आचार्य की आज्ञानुसार एवं भगवत्प्रेरणा से प्रेरित होकर वृद्धावस्था को प्राप्त होते हुए भी आचार्याज्ञानुसार संस्था की स्थापना के लिए प्रथम सोपान रूप में प्रकृत "पञ्च रहस्य" का प्रकाशन किया गया है। अयोध्यास्थित श्री तोताद्रिमठ स्वर्गद्वार के वर्तमान अध्यक्ष १००८ श्री स्वामी देवनायकाचार्यजी महाराज से प्राप्त मंगलाशासन के परिणाम स्वरूप तथा उत्तराधिकारी स्वामी बालकृष्णाचार्यजी महाराज के द्वारा प्राप्त सहयोग के परिणाम स्वरूप यह अकिञ्चनदास "अनन्त धर्म सोपान-श्रीरामानुज मठ" नामक संस्था स्थापित करने का साहस कर रहा है, जिसमें आप सभी लोगों से सहयोग की अपेक्षा है।

अनुरोधक :-

दासानुदास

भक्तिसार रामानुज दास

॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥

श्रीभगवद्रामानुजसिद्धान्त

विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के प्रवर्तक आचार्य श्रीभगवद्रामानुजाचार्य स्वामी हैं। इन परम कृपालु आचार्य के अनुग्रह से ही हम लोग भगवान् श्रियःपति की आराधना करने में सफल बन सकते हैं। आज हम लोग जिस श्रीवैष्णव सम्प्रदाय में दीक्षित होकर स्वय को गौरवान्वित समझते हैं यह उन्हीं विशालहृदयसम्पन्न श्रीरामानुज स्वामीजी की परम कृपा का फल है। अनादिसिद्धवैदिक सिद्धान्त की मर्यादा का परिपालन करने में हमारे नाथ-यामुन-यतिवरादि पूर्वाचार्यों ने दृढ़ दीक्षा धारण कर रक्खा था। विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त को ही अपना अभिमत मानकर वेदव्यासादिपरमर्षियों ने भगवान् नारायण को ही अपने ब्रह्मसूत्र आदि वेदान्त ग्रन्थों में जगत्कारणतत्व के रूप में एवम् उपास्य व मोक्षप्रद के रूप में भी अकाट्यरूप में निरूपण करके अपने परवर्ती लोगों के लिए भी महोपदेश दे रक्खा था। उपनिषत्सिद्धान्त में प्रकृति जीव एवम् ईश्वर तीन ही तत्व बताये गये हैं। चेतनाचेतन भगवान के शरीर (परतन्त्र) हैं। भगवान चेतनाचेतनों के अन्तर्यामी (शरीरी) हैं। हमें भगवत्प्राप्ति के लिए भगवान् स्वयं ही उपाय हैं। लक्ष्मीजी के पुरुषकार पूर्वक भगवदाश्रयण करने के लिए श्रीपाञ्चरात्रागम आदि प्रामाणिक ग्रन्थों में उपदेश दिया गया है। कर्म सम्बन्ध छूटने के बाद भगवान् के दिव्यलोक श्रीवैकुण्ठ में जाकर भगवान का नित्य कैङ्कर्य (सेवा) को प्राप्त करना ही इस जीवात्मा का वास्तविक पुरुषार्थ है। इस उत्तमफलप्राप्ति के लिए सदाचार्य का आश्रय लेना परमावश्यक है। इन्हीं विशेषों को अपने अनुष्ठान एवम् उपदेश के माध्यम से श्री रामानुज स्वामीजी ने हमें दर्शाया है।

॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥

श्री वैष्णवों के जानने योग्य कुछ महत्त्वपूर्ण नामावली

तत्रादौ वैष्णवाचारोपदेशाय गुरुं श्रयेत्
स गुरुर्विप्रजातीयः सप्तपूर्वज वैष्णवः
सत्सम्प्रदाय संयुक्तो मन्त्र रत्नार्थ कोविदः
ज्ञान वैराग्य सम्पन्नो वेद वेदाङ्ग पारगः ॥
(वै० ध० शि०)

श्रीरामानुज स्वामीजी महाराज के पाँच गुरु

१– श्री महापूर्ण स्वामी जी
२– श्री शैलपूर्ण स्वामी जी
३– श्री गोष्ठीपूर्ण स्वामी जी
४– श्री मालाकार स्वामी जी
५– श्री वररङ्गाचार्य स्वामी जी

श्री रामानुज स्वामीजी महाराज के मुख्य पांच शिष्य

१– श्री कूरेश स्वामी जी
२– श्री दाशरथि स्वामी जी
३– श्री आंध्रपूर्ण स्वामी जी
४– श्री गोविन्दाचार्य स्वामी जी
५– श्री धनुर्दास स्वामी जी

❀ मुख्य अम्बाजी ❀

१- श्री गोदाम्बाजी-श्री लक्ष्मी अवतार
२-श्रीकांतिमती अम्बाजी-श्रीरामानुज स्वामीजी की माता
३-श्रीअतुलाम्बाजी-श्रीमहापूर्णस्वामीजी की पुत्री
४-श्रीनाथनायकीअम्बाजी-श्रीशठकोपस्वामीजी की माता
५-श्रीकुमुदवल्लीअम्बाजी-श्रीपरकालस्वामीजी की पत्नी
६-श्रीआच्चिअम्बाजी-श्रीरामानुज स्वामीजी की शिष्या
७-श्रीचैलाचलाम्बाजी-श्रीरामानुजस्वामीजी की शिष्या
८-श्री हेमाम्बाजी-श्रीधनुर्दास स्वामीजी की पत्नी

द्वादश आल्वारों (दक्षिण भारत के सन्तों) की नामावली

१- सरोयोगी
२- भूतयोगी
३- महदाह्वययोगी
४- भक्तिसारसूरि
५- शठकोपसूरि
६- श्रीविष्णुचित्तसूरि
७- श्रीकुलशेखरसूरि
८- भक्ताङ्घ्रिरेणुसूरि
९- मुनिवाहन (योगिवाहन) सूरि
१०- परकालसूरि
११- मधुरकविसूरि
१२- गोदाम्बाजी

श्रीभाष्यकार रामानुज स्वामी जी महाराज

यो नित्यमच्युत पदाम्बुज युग्मरुक्म-
व्यामोहतस्तदितराणि तृणाय मेने।
अस्मद्गुरोर्भगवतोऽस्य दयैक सिन्धो
रामानुजस्य चरणौ शरणं प्रपद्ये।।

श्री वरवरमुनि स्वामी जी महाराज

श्री शैलेशदयापात्रंधीभक्त्यादिगुणार्णवम्
यतीद्र प्रवणं वन्दे रम्यजामातरं मुनिम्।।

सप्तविंशतितम पीठाधिपति
श्री वानमामलै रामानुज जीयर स्वामी

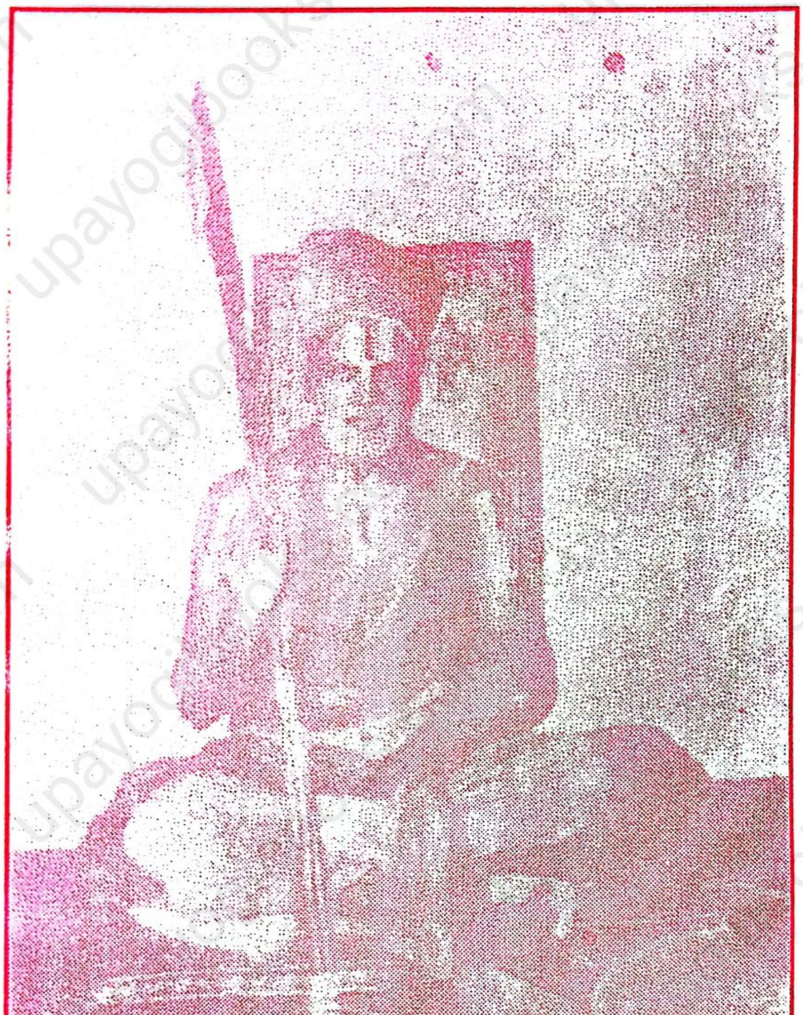

श्रीमच्छठारिकलिजिद्यतिराजसौम्य-
जामातृवानगिरियोगिपदाब्ज भक्तम्।
श्रुत्यन्तयुग्मसुखबोधनसंप्रवीणम् ।
रामानुजं मुनिवरं गुरुमाश्रयामः।।

वर्त्तमान पीठाधिपति
श्री वानमामलै रामानुज जीयर स्वामी

श्रीम[illegible]रयोगिपदाब्ज भृङ्गम्
श्रीवान शैल मुनिवर्यदयैकपात्रम्।
विख्यात वेदशिखरोभयतत्त्वबोधम्
रामानुजं कलिजितं मुनिमाश्रयामः।।

श्री तोताद्रिमठ स्वर्गद्वार अयोध्या के संस्थापक
१००८ स्वामी श्री अनन्ताचार्य जी महाराज

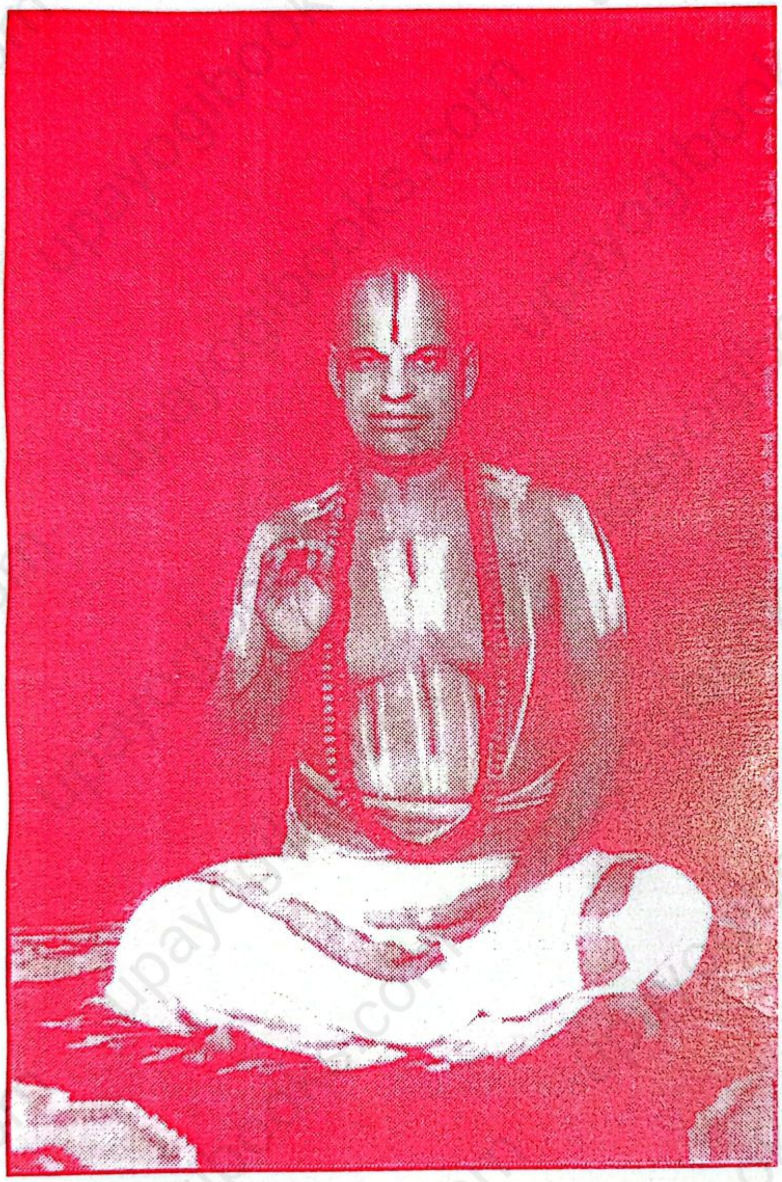

श्रीमद्यतीन्द्र वरयोगि पदाब्ज भृङ्गम्
श्रीवानशैल-यमिनां करुणैकपात्रम्।
श्रीमच्छठारि-निगमान्त-रसैक-विज्ञम्
श्रीस्वाम्यनन्त-गुरुवर्यमहं प्रपद्ये।।

श्री तोताद्रिमठ स्वर्गद्वार अयोध्या के वर्त्तमान अध्यक्ष
१००८ स्वामी श्री देवनायकाचार्य जी महाराज

श्रीवानशैल यतिराज पदाब्ज भृङ्गम्,
श्रीमद् अनन्त गुरुशेखर शिष्यरत्नम् ।
श्रीपङ्कजाक्ष-चरणार्पित सर्वभारम्,
श्रीदेवनायक गुरुं शरणं प्रपद्ये ।।

श्रियै नमः ।

श्रीमते रामानुजाय नमः ।। श्रीमद्वरवर मुनये नमः

श्रीमते वानाद्रियोगिने नमः

* भाषानुवादसहितम् *

अर्थपञ्चकम्

संसारिणश्चेतनस्य तत्त्वज्ञानोत्पत्त्योज्जीवनसमये अर्थपञ्चकज्ञानोत्पत्तिरावश्यकी ।। १ ।।

अर्थपञ्चकज्ञानन्नाम स्वस्वरूपपरस्वरूपपुरुषार्थस्वरूपोपायस्वरूपविरोधिस्वरूपाणां याथात्म्यज्ञानम् ।। २ ।।

अनादिकाल से इस जन्ममरणरूप संसार में पड़े हुए जीव को तत्त्वज्ञान से उज्जीवन होने के समय में पाँच पदार्थों का ज्ञान अवश्य होना चाहिये ।। १ ।।

मेरा कैसा स्वरूप है १ मुझको संसार से छुड़ाने वाले परमात्मा का कैसा स्वरूप है २ मुझको किस चीज की चाहना करनी चाहिये ३ इस संसार से छूटजाने का क्या उपाय है ४ मुझे इस संसार से कौन नहीं छूटने देता ५ इन पांच पदार्थों का जानलेना ही अर्थपञ्चक ज्ञान कहाता है ।। २ ।।

एतेष्वेकैको विषयः पञ्चधा भवति ॥ ३ ॥

स्वस्वरूपमित्यात्मस्वरूपमुच्यते ॥ ४ ॥

तच्चाऽऽत्मस्वरूपन्नित्यमुक्तबद्धकेवलमुमुक्षुभेदात् पञ्चविधम् । ५ ॥

परस्वरूपं परव्यूहविभवान्तर्याम्यर्चावतारभेदात् पञ्चविधम् ॥ ६ ॥

पुरुषेण अर्थनीयः पुरुषार्थः सच धर्मार्थकामात्मानुभव-भगवदनुभवभेदात्पञ्चविधः ॥ ७ ॥

इन पाँच पदार्थों में एक-एक पदार्थ पाँच प्रकार का होता है ॥ ३ ॥

स्वस्वरूप से आत्मा का स्वरूप कहा जाता है ॥ ४ ॥

नित्य १ मुक्त २ बद्ध ३ केवल ४ मुमुक्षु ५ इन भेदों से वह आत्मा का स्वरूप पाँच प्रकार का है ॥ ५ ॥

पर १ व्यूह २ विभव ३ अन्तर्यामि ४ अर्चावतार ५ इन भेदों से परमात्मा का स्वरूप पांच प्रकार का हैं ॥ ६ ॥

पुरुष जिसकी चाहना करै उसको पुरुषार्थ कहते हैं वह पुरुषार्थ धर्म १ अर्थ २ काम ३ आत्मानुभव ४ भगवान का अनुभव ५ इन भेदों से पाँच प्रकार का है ॥ ७ ॥

उपायञ्च कर्मज्ञानभक्तिप्रपत्त्याचार्याभिमानभेदात्पंचविधः ॥ ८ ॥

विरोधी च स्वस्वरूपविरोधी परस्वरूपविरोधी पुरुषार्थविरोधी उपायविरोधी प्राप्तिविरोधी चेति पंचविधः ॥९॥

तत्र नित्याः सदा संसाररूपावद्यरहिता भगवदानुकूल्यैकभोगाः श्रीवैकुंठनाथस्य पट्टबन्धनस्योचिता मन्त्रिणः

उपाय पाँच प्रकार का होता है कर्म १ अर्थात् (दान यज्ञादिकों का करना) ज्ञान २ भक्ति ३ प्रपत्ति ४ (प्रभु को अपना रक्षा करने वाला मानकर और सब उपायों का भरोसा छोड़ देना) आचार्य्याभिमान ५ प्रभुकी शरणागति के उपदेश करने वाले आचार्य्य ही मेरा उद्धार करेंगे ऐसा विश्वास करना ॥ ८ ॥

विरोधी पाँच प्रकार होता है, स्वरूपविरोधी, जो जीव को अपने स्वरूप को नहीं जानने देता १ परस्वरूप विरोधी, जो परमात्मा का ज्ञान नहीं होने देता २ पुरुषार्थविरोधी, हम जिसको चाहते हैं उसको जो हमें नहीं मिलने देता है ३ उपाय विरोधी, हम जो कुछ अपने प्यारे पदार्थ के मिलने का उपाय करते हैं उसको पूरा नहीं होने देता है ४ प्राप्ति विरोधी, जो हमारे प्रिय पदार्थ को हमें नहीं मिलने देता ५ ॥ ९ ॥

ईश्वरनियोगात्सृष्टिस्थितिसंहारान् कर्तुं शक्ताः परव्यूहादिसर्वावस्थास्वप्यनुसृत्य कैङ्कर्यंकरणशीलाः विष्वक्सेनप्रभृतयोऽमराः ॥ १० ॥

मुक्ता नाम भगवत्प्रसादेन निवृत्तप्रकृतिसम्बन्ध-प्रयुक्तक्लेशमलाः भगवत्स्वरूपरूपगुणविभवानुभूयाऽनुभवजनितप्रीतेरुत्कूलत्वात् । वाचा यथा

नित्य मुक्त बद्ध केवल मुमुक्षु इन भेदों से पाँच प्रकार के जीव होते हैं उनमें नित्य जीव वे कहाते हैं जिनको संसार का दुःख कभी नही भोगना पड़ा हो और जिन्होंने भगवान् के अनुकूल बना रहना ही अपना सुख समझा हो और जो श्री वैकुण्ठनाथ के पट्ट बन्धन के लायक और मन्त्री तथा ईश्वर की आज्ञा से जगत् के सृष्टि पालन संहार करने में समर्थ हों और भगवान् की परव्यूह आदि जितनी अवस्था है उनमें प्राप्त होकर अपने स्वामी की सेवा करने का जिनका स्वभाव है, जैसे श्रीविष्वक्सेनजी गरुड़जी शेषजी इत्यादि ॥ १० ॥

पर्य्याप्ति स्तुत्वा तृप्ति म्विना बैकुण्ठमहानगरे वर्तमानाः सन्तोषानन्दप्रयुक्ता मुनयः ।। ११ ।।

बद्धा नाम पाञ्चभौतिकोऽनित्यः सुखदुःखानुभव परिकर आत्मविश्लेषे दर्शनस्पर्शनायोग्यो ऽशुद्धया-

---

मुक्त जीव वे कहाते हैं भगवान् की कृपा से प्रकृति के सम्बन्ध से पैदा हुए अनेक प्रकार के दुःख जिनके दूर हो गये और भगवान् के स्वरूप गुण माधुर्य्य एश्वर्य का अनुभव करने से प्रीति का प्रवाह उत्पन्न हो जाता है उससे अपनी वाणी से प्रभु की स्तुति करते रहते प्रभु के गुणगान करने से कभी तृप्ति नहीं होती भगवद्गुण का अनुभव करने से ही उनको परमानन्द और सन्तोष हो जाता है और सदा श्रीवैकुण्ठ लोक में निवास करते हैं ।। ११ ।।

यह देह पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश इन पाँच भूतों से बना है अनित्य है और सुख दुःख के भोगने का साधन है जब इसमें से आत्मा निकल जाता है तब यह देखने और छूने के योग्य नहीं रहता है अशुद्धि का स्थान है और अज्ञान अन्यथा ज्ञान विपरीत ज्ञान को पैदा करता है ऐसे देह को ही जो आत्मा मानते हैं और शब्दा-दिक विषय के अनुभव से अपने देह का पालन करना ही

स्पदोऽज्ञानान्यथाज्ञानविपरीतज्ञानजनको देह एवा-ऽऽत्मेति शब्दादिविषयानुभवजनितस्वदेहपोषणमेव पुरुषार्थ इति शब्दादिविषयलाभोपयिकतया वर्णा-श्रमधर्मान् विनाश्याऽसेव्यसेवां कृत्वा भूतहिंसाङ्-कृत्वा परदारपरद्रव्यापहारं कृत्वा संसारवर्द्धका भगवद्विमुखा श्चेतनाः ।। १२ ।।

केवलो नाम एकाकी अत्यन्तक्षुत्पिपासाभ्यां पीडितो भक्ष्याभक्ष्यविवेकम् कर्त्तुमशक्तः स्वदेहं स्वयमेव भक्षित्वा प्रसन्नो भवति तथा संसारदावाग्निना

जिनने पुरुषार्थ समझ रक्खा है और विषयों के मिलने के वास्ते अपने वर्ण आश्रम के धर्मों का नाश करके जो छूने के लायक भी नहीं है उनकी सेवा करके अनेक प्राणियों की हिंसा करके पराई स्त्री पराये धन को ग्रहण करते हैं ऐसे जीव अपने जन्म मरण रूप संसार को आप ही बढ़ाते रहते हैं इसीसे ये बद्ध कहाते हैं ।। १२ ।।

केवल नाम उस जीव का है जैसे कोई अकेला रहने वाला बहुत भूख प्यास से जब पीड़ित हो जाता है तब उसको यह ज्ञान नहीं रहता कि कौन वस्तु मेरे खाने के

तप्तस्सन् संसारदुःखनिवृत्त्यर्थं शास्त्रजन्यज्ञानेन प्रकृत्यात्मविवेकम् कृत्वा प्रकृतेर्दुःखाश्रयत्वहेय-पदार्थसमूहत्वरूपाकारत्वमात्मनः प्रकृतेः परत्वस्वयं-प्रकाशत्वस्वतः सुखित्वनित्यत्वाप्राकृतत्वस्वरूपाका-रञ्चाऽनुसन्धाय पूर्वं स्वेनानुभूतदुःखाधिक्येनैतदल्परस आसक्तो ज्ञानानन्दमयपरमात्म विवेकम् कर्त्तु मशक्तः एतदात्मप्राप्तिसाधनभूतज्ञानयोगनिष्ठो योग-फलमात्मानुभवमात्रमेव पुरुषार्थत्वेनाऽनुभूय पश्चात् संसारसम्बन्ध भगवत्प्राप्तिरहितः यावदात्म्यभाव्य-शरीरी संचरन् कश्चित् ॥ १३ ॥

योग्य है और कौन न खाने के योग्य तदनन्तर वह अपने देह को आप ही खाकर प्रसन्न होता हो, वैसे ही यह जीव भी संसार रूप दावानल से तपाया हुआ संसार के दुःख की निवृत्ति के वास्ते शास्त्र से उत्पन्न हुए ज्ञान से अपने आत्मा को प्रकृति से अलग जान लेता है प्रकृति सब दुःखों का आधार है और त्याग करने लायक जितने पदार्थ हैं वे सब प्रकृति के ही स्वरूप हैं और आत्मा प्रकृति से पर है स्वयं प्रकाश है अपने ही से सुखी है नित्य है अप्राकृत स्वरूप है

मोक्षेच्छूनाम्मुमुक्षव इति नाम एतेच मुमुक्षवः उपासकाः प्रपन्नाश्चद्विधा ।। १४ ।।

ईश्वरविषये परत्वं नाम परमपदे 'ऽवाक्यनादर' इति वर्तमानः आदिज्योतिरूपः परवासुदेवः ।। १५ ।।

ऐसा अपने को जानकर संसार में पहले इसने बहुत दुःख भोगे थे इससे यह जीव थोड़े ही सुख में आसक्त हो जाता है आनन्द के निधि परमात्मा के अनुभव करने में असमर्थ हो जाता है और यह जान लेता है कि मुझको ज्ञान से ही आत्म सुख मिला है और मेरे योग का फल यही है जो मैं अपने आत्मा को सुख रूप जानता हूं वस इससे अधिक और कुछ सुख नहीं है तब संसार से यह छूट जाता है केवल अपने आत्मा के अनुभव में लगा रहता है इसको आनन्दनिधि भगवत्स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती सदा शरीर से रहित यह अधिकारी है ऐसे जीव को कैवल्यानिष्ठ कहते हैं ।। १३ ।।

जो जीव यह चाहते हैं कि हमारा मोक्ष हो जाय वे जीव मुमुक्षु कहाते हैं उनके दो भेद हैं एक तो उपासक होते हैं और दूसरे प्रपन्न होते हैं ।। १४ ।।

पर १ व्यूह २ विभव ३ अन्तर्यामी ४ अर्चा ५ ईश्वर

व्यूहो नाम सृष्टिस्थितिसंहारकर्तारः संकर्षण-प्रद्युम्नानिरुद्धाः ॥ १६ ॥

विभवो नाम रामकृष्णाद्यवताराः ॥ १७ ॥

अन्तर्यामित्वमुभयविधम् 'दासस्यान्तर्वर्त्त-मान' इति 'ममप्राण' इति चोक्तप्रकारेण 'आत्मनो ऽन्तःकमले प्रविष्ट' इति 'कमलवासिनी स्वयमप्या-गत्य प्रविश्य' इति 'अन्तःप्रविश्य स्वस्मिन्नादर-

---

के ये पाँच प्रकार पहले कह आये हैं, उनमें पर स्वरूप उस को कहते हैं जो परमपद वैकुण्ठ में सदा वर्तमान है, और जो आदि ज्योति रूप बासुदेव है, जिसको वेद 'अवाकी अनादर' इस प्रकार से कहता है ॥ १५ ॥

व्यूह नाम ईश्वर के उस रूपका है, जो जगत् की सृष्टि पालन संहार के करने वाले संकर्षण प्रद्युम्न अनिरूद्ध नाम से विख्यात है ॥ १६ ॥

श्रीराम श्रीकृष्ण इत्यादिक जो अवतार हैं ये विभव कहाते हैं ॥ १७ ॥

अन्तर्यामी स्वरूप दो प्रकार का है जो दासों के हृदय कमल में श्री लक्ष्मी सहित विचित्र विग्रह सहित वर्तमान रहता है, और प्रवृत्ति निवृत्ति रूप कर्मों को सदा देखता

बर्द्धकसुन्दर' इति 'विचारवतां विचारं सर्वं सह स्थित्वा जानासी' इति चोक्तप्रकारेण लक्ष्मीसहितो विलक्षणविग्रहयुक्तो हृदयकमले सकलप्रवृत्तिनिवृत्ती: सदाऽवलोकयन् वर्तमानः ।। १८ ।।

अर्चावतारो नाम 'दासानां यदभिमतं तद्-रूपवान् तदभिमतं यन्नाम तन्नामवान्' इत्युक्त-प्रकारेण स्वार्थरूपनामरहितः आश्रिताभिमतरूपस्त-त्कृतनामा सर्वज्ञोप्यज्ञ इव सर्वशक्तिरप्यशक्त

रहता है प्रभु के इसी अन्तर्यामीस्वरूप का पूर्वाचार्य्यों ने अपनी मधुर श्रीसूक्तियों में इस प्रकार वर्णन किया है, हे नाथ ! आप अपने दास के भीतर विराजते हैं । हे मेरे प्राण ! आत्मा के अन्तःकरण कमल में प्रवेश कर गये हों, कमल वासिनी श्रीलक्ष्मी जी ने भी आप आकर प्रवेश किये है, हमारे भीतर प्रवेश करके अपने में आदर के बढ़ाने वाले हे सुन्दर ! बिचार वालों के समस्त विचारों के साथ रह-कर आप जानते हैं इत्यादि वाक्यों से ।। १८ ।।

पाँचवा अर्चावतार ईश्वर का स्वरूप हैं नाम रूप से अपना प्रयोजन ईश्वर को कुछ नहीं है किन्तु भक्तजन जैसे स्वरूप का ध्यान करते हैं, और जिस नाम में भक्तों का

इवाऽऽप्तसमस्तकामोऽपि सापेक्ष इव रक्षकोऽपि रक्ष्य इव स्वस्वामिभावं विपरीतं कृत्वा नेत्रविषयतया सर्वसुलभः आलयेषु गृहेषु च वर्तमानः ।। १६ ।।

प्रेम है वैसा ही स्वरूप और नाम धारण कर के भगवान् अर्चावतार में विराजते हैं, अर्चावतार में ईश्वर सर्वज्ञ है तब भी अज्ञ की तरह, और सर्व शक्ति वाले होकर भी असमर्थ से, अवाप्तसमस्तकाम होकर भी अपेक्षा करते हुवे से, रक्षक होकर भी रक्षा करने के योग्य मालूम होते हैं, यद्यपि आप सबके स्वामी हैं परन्तु अर्चावतार में तो अपने भक्तों के आधीन अपने स्वरूप को कर दिया है इसी से आप सबके नेत्रों को सुलभ हो गये हैं। किसी भक्त के प्रेम से आप विचित्र मन्दिर में विराजते हैं और किसी भक्त के प्रेम से एक छोटे से घर में विराजते हैं, इसी से प्रभू के प्रेमियों ने कहा है कि हे नाथ ! आपके दासों को जैसे स्वरूप में अनुराग है और जिस नाम में प्रीति है आप उसी स्वरूप को और नाम को धारण कर लेते हैं। पुरुष जिस बस्तु की इच्छा करे वह पुरुषार्थ कहाता है, सो धर्म १ अर्थ २ काम ३ आत्मानुभव ४ भगवदनुभव ५ ये पाँच प्रकार का पहले कह चुके हैं अब एक एक का लक्षण कहते हैं ।। १६ ।।

पुरुषार्थेषु धर्मो नाम प्राणिरक्षणोपयिकतया क्रियमाणा वृत्तिविशेषा ॥ २० ॥

अर्थो नाम वर्णाश्रमानुरूपं धनधान्ये सङ्गृह्य देवताविषयेषु पित्र्येषु च कर्मसु प्राणिविषयेषु-चोत्कृष्टदेशकालपात्राणि ज्ञात्वा धर्मबुद्ध्या व्यय-करणम् ॥ २१ ॥

कामो नाम ऐहिलौकिकः पारलौकिकश्च द्विविधः ॥ २२ ॥

तत्र ऐहिलौकिकः पितृमातृरत्नधनधान्यान्न-

पुरुषार्थों में धर्म वो कहाता है जिसके करने से जीव की रक्षा हो सके, जैसे यज्ञ दानादिक ॥ २० ॥

यहाँ अर्थ उसको जानना चाहिये जो कि वर्ण आश्रम योग्य धन और अन्नादिक संग्रह करके देवताओं के कार्य में, और पित्रों के कार्य में, और जीवों के कार्य में अच्छे देश समय पात्र जानकर धर्म की बुद्धि से खर्च किया जाय ॥ २१

काम दो प्रकार का है, एक ऐहलौकिक जो इसी लोक में भोगा जाता है। दूसरा पारलौकिक-जो परलोक में भोगा जाता है ॥ २२ ॥

पानीयदारपुत्रमित्रपशुगृहक्षेत्रचन्दनकुसुमताम्बूलवस्त्रादिपदार्थेषु शब्दादिविषयानुभवप्रयुक्तसुखविशेषाः ॥ २३ ॥

पारलौकिको नाम एतद्विलक्षणेषु तेजोरूपेषु-स्वर्गादिलोकेषु गत्वा क्षुत्पिपासाशोकमोहजरामरणादिकम्विनाऽर्जितपुण्यानुरूप - ममृतपानंकृत्वाऽप्सरोभिस्सह शब्दादिविषयानुभवकरणम् ॥ २४ ॥

केवलो नाम दुःखनिवृत्तिमात्ररूपं केवलात्मानुभवं च मोक्ष इति वदन्ति ॥ २५ ॥

इस लोक में पिता माता रत्न धन धान्य अन्न जल स्त्री पुत्र मित्र पशु गृह भूमि चन्दन पुष्प ताम्बूल वस्त्रादि पदार्थों में अनुभव करने से जो सुख होता है और शब्दादि विषयों के भोगने से जो सुख होता है सो सब ऐहलौकिक है ॥ २३ ॥

जो इस लोक से विलक्षण तेजोमय स्वर्गादि लोकों में जाकर भूख प्यास शोक मोह जरा [बूढ़ापन] मरण इनसे रहित होकर पहले किये हुए कर्म के योग्य अमृत पान करके अप्सराओं के साथ शब्दादि विषयों को अनुभव करना, इसको पारलौकिक कर्म कहते हैं ॥ २४ ॥

अथ परमपुरुषार्थलक्षणमोक्षो नाम प्रारब्ध-कर्मविशेषाणामवश्यानुभाव्यानाम्पुण्यपापाना
न्नाशे ऽस्ति जायते परिणमते विवर्द्धते ऽपक्षीयते विनश्यती त्युक्तप्रकारेण षड्भावविकारास्पदन्ता-पत्त्रयाश्रयं भगवत्स्वरूपं चावृत्य विपरीतज्ञानोत्पादकं संसारवर्द्धकं स्थूल शरीरमुपेक्षया त्यक्त्वा सुषुम्ना-नाड्या शिरःकपालम्भित्वा निर्गत्य सूक्ष्मशरीरेणा-

---

केवल पुरुषार्थ उसको कहते हैं, जिसमें दुःख की निवृत्ति मात्र हो जाय और केवल अपने आत्मा का ही अनुभव होय। इसको भी कोई मोक्ष कहते हैं ॥ २५ ॥

अस्ति जायते परिणमते विवर्द्धते अपक्षीयते विनश्यति ये छै भाव विकार इस शरीर में होते हैं और (अधिभूत) जलवायु तेज भूमि इत्यादिक से होने वाला दुःख (अध्यात्म) मनसे होने वाला दुःख (अधिदैव) देवता द्वारा होने वाला दुःख ये तीन प्रकार के ताप भी इसी स्थूल शरीर में होते है, और यही शरीर भगवान् के स्वरूप के जानने में आवरण हो जाता है। और विपरीत ज्ञान को पैदा करता है, और जन्म मरण रूप संसार को बढ़ाता है। जब पहिले किये हुए पुण्य पाप जोकि अवश्य भोगने पड़ते हैं इनका

ऽऽकाशं गन्तुं मार्गम्प्राप्योष्णमण्डलान्तर्गत्वा सूक्ष्मशरीरं वासनारेणुं च विरजास्नानेन दूरीकृत्य सकलतापनिवर्तकामानवकरस्पर्शं प्राप्य शुद्धसत्वात्मकं पञ्चोपनिषन्मयं ज्ञानानन्दजनकं भगवदनुभवैकपरतेजोमयमप्राकृतविग्रहं लब्ध्वा किरीटयुक्तेष्वमरेषु प्रत्युद्गच्छत्सु श्रीमहामणिमण्डपम्प्राप्य लक्ष्मीसहितं भूमिनीलानायकन्देवसमूहेषु सेवमानेषु ज्योतिः

नाश हो जाता है। तब इस स्थूल शरीर में जीव को उपेक्षा हो जाती है। अर्थात् जिसको बड़ यत्न से पालन करता है उसी शरीर को छोड़कर सुषुम्ना नाड़ी से निकल कर कपाल को भेदकर सूक्ष्मशरीर सहित आकाश में जाने के लिए इसको मार्ग मिल जाता है, फिर सूर्य के उष्ण किरण मण्डल में जाकर प्रकृति मण्डल से बाहर श्रीविरजानदी आती है उसमें स्नान करके अपने सूक्ष्म शरीर और अनादि काल के वासनारूप रेणु को छोड़ देता है, फिर सकल तापों के दूर करने वाले अमानव पुरुष के हाथ का इसको स्पर्श होता है, उससे शुद्ध सत्वात्मक पञ्च उपनिषन्मय ज्ञान और आनन्द का पैदा करने वाला केवल भगवान् का ही जिससे अनुभव होता है, ऐसा तेजोमय अप्राकृत दिव्य

प्रवाहे आविर्भवद्रूपं श्रीवैकुण्ठनाथन्नित्य मनुभूय नित्यकैङ्कर्य्यस्वभावविशिष्टतया स्थितिः ॥ २६ ॥

उपायेषु कर्मयोगो नाम यज्ञदानतपोध्या-नसन्ध्यावन्दन पञ्चमहायज्ञाद्यग्निहोत्रतीर्थयात्रापुण्य-क्षेत्रवासकृच्छचान्द्रायणपुण्यनदीस्नानव्रतचातुर्मास्य-फलमूलाशनशास्त्राभ्यासभगवत्समाराधनजपतर्पणक-र्मानुष्ठानप्रयुक्तकायशोषणेन पापनाशोत्पत्तौ तत्तदि-

---

शरीर इसको मिलता है। फिर दिव्य किरीट कुण्डलादि भूषणों को धारण किये हुए श्री वैकुण्ठ निवासी इस जीवको सामने लेने आते हैं, तब यह श्रीमहामणि वाले मण्डप में पहुँचकर श्री वैकुण्ठ निवासी देवगण जिनकी सेवा कर रहे हैं ऐसे श्रीलक्ष्मीजी सहित भूदेवी, नीलादेवी के नायक श्री वैकुण्ठनाथ जिनके तेज के प्रवाह में रूप प्रकट हो रहा है, उनका अनुभव करके सदा सेवा करता रहता है इसी का नाम मोक्ष हैं यही परम पुरुषार्थ है ॥ २६ ॥

पाँच प्रकार के उपाय पहले कह चुके हैं, उनमें कर्म-योग का स्वरूप कहते हैं यज्ञ, दान, तप, ध्यान, सन्ध्या-वन्दन, पञ्च महायज्ञादिक, अग्निहोत्र, तीर्थयात्रा, पुण्यक्षेत्र-वास, कृच्छ्र चान्द्रायण, पुण्य नदी स्नान, व्रत चातुर्मास्य,

न्द्रियद्वारा प्रसरतो धर्मभूतज्ञानस्य शब्दादीना मविषयत्वेन विषयापेक्षायां यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधिरूपाष्टाङ्गयोगक्रमेण योगाभ्यासकालपर्यन्तं ज्ञानस्यात्मनो विषयताकरणम् ।। २७ ।।

अयं च ज्ञानयोगस्य सहकारी ऐश्वर्यस्य प्रधानसाधनं च भवेत् ।। २८ ।।

ज्ञानयोगो नाम, एवं योगजन्यज्ञानस्य हृदय-

फलमूलों का भोजन, शास्त्र का अभ्यास, भगवान् का पूजन, जप तर्पणादि कर्मों के अनुष्ठान से शरीर को सुखाकर पापों का नाश करना, इन्द्रियों के द्वारा फैलने वाले ज्ञान को शब्दादि विषयों से रोक लेना, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, इस आठ प्रकार के योग से जब तक योग का अभ्यास करे, तब तक ज्ञान से अपने आत्मा को ही अनुभव करना, यह कर्म योग कहाता है ।। २७ ।।

यह कर्म योग ज्ञानयोग की सिद्धि भी करता है, और ऐश्वर्य का मुख्य कारण होता है । २८ ।।

अष्टांग योग से उत्पन्न हुए ज्ञान से शंख, चक्र, गदा के

मण्डलादित्यमण्डलप्रभृतिस्थलविशेषेषु च वर्तमानं सर्वेश्वरं विषयं कृत्वा तं विषयं शंखचक्रगदाधरं पीताम्बर किरीटनूपुरादि दिव्यभूषणालंकृतं लक्ष्मी-सहितं चानुभूय योगाभ्यासक्रमेणानुभव कालम्बर्द्धं-यित्वा ऽनवरतभावनारूपत्वापादनम् ॥ २९ ॥

अयं च भक्तियोगस्य सहकारी कैवल्यस्य प्रधान-साधनं भवेत् ॥ ३० ॥

भक्तियोगो नाम तैलधारावदविच्छिन्नस्मृति-सन्तानरूपानुभवस्य प्रीतिरूपापन्नत्वापादनं तत्स्व-

---

धारण करने वाले पीताम्बर किरीट नूपुरादि दिव्यभूषणों से सुशोभित लक्ष्मीजी सहित श्रीमन्नारायण को अनुभव करके धीरे धीरे योगाभ्यास से अनुभव के समय को बढ़ा-कर सदा श्रीमन्नारायण के स्वरूप की भावना करते रहना यह ज्ञान योग कहाता है ॥ २९ ॥

यह ज्ञानयोग भक्तियोग को भी सिद्ध करता है. और कैवल्य का मुख्य साधन होता है ॥ ३० ॥

जैसे तैल की धारा पात्र में गिरती हो, उस समय उसके बीच में कोई छिद्र नहीं दीखता है, इसी तरह श्री गोविन्द को सदा याद करते रहना, और स्मरण में

रूपे विचारिते प्रारब्धकर्मनिवृत्त्यौपयिकतया साधन-साध्येऽनुष्ठाय तत्सङ्कोचविकाशोपयोगिपरिणाम-करणम् ।। ३१ ।।

अथ प्रपत्त्युपायो नाम एवं कर्मज्ञानसहकारिणि भक्तियोगे ऽशक्तानामप्राप्तानां सुकरः शीघ्र-फलप्रदः उपायस्य सकृत्कृतत्वात्, उपायानुष्ठान-

---

प्रारब्ध कर्म की निवृत्ति के वास्ते साधन को अनुष्ठान करके प्रारब्ध कर्म से भगवान के स्मरण करने में किसी प्रकार से संकोच हो गया हो तो उसको दूर करके श्रीमन्नारायण का सदा ध्यान करना, यह भक्तियोग कहलाता है ।। ३१ ।।

जो पुरुष अपने वर्ण आश्रम के कर्म को करता हो, और ज्ञानयोग का भी अधिकारी हो वह ही पुरुष भक्तियोग को कर सकता है । जिनके पास कर्म और ज्ञान ये दोनों ही सामग्री नहीं है वे भक्तियोग के करने में असमर्थ है । और भगवत्स्वरूप को प्राप्त नहीं हुए हैं, उनके वास्ते (प्रपत्ति) शरणागति रूप उपाय करना सहज है, इसको कुछ और सामग्री नहीं चाहिए । और (प्रपत्ति) शरणागति नाम उपाय जल्दी फल को देता है । यह उपाय एक ही वार किया जाता है, इस उपाय के करने वाला भगवान् के स्वरूप का ही प्रेम रखना, भगवान् के स्वरूप के विचार करने के समय

समनन्तरं जायमानभगवद्विषयानुभवानां प्राप्यकोटि-घटितत्वात्, सुशकः स्वरूपानुरूपश्च भवति इयं चार्त्तरूपा प्रपत्तिर्दृप्तरूपा प्रपत्तिश्चेतिद्विधा । ३२ ॥

तत्रार्तरूपप्रपत्तिर्नाम निर्हेतुकभगवत्प्रसादेन हेतुना शास्त्राभ्यासेन सदाचार्योपदेशक्रमेण यथा ज्ञानोत्पत्त्यनन्तरं भगवदनुभवस्य विपरीतदेहसम्ब-न्धस्य देशसम्बन्धस्य दैशिकसहवासस्य च दुःस-हत्वात्, भगवदनुभवस्यैकान्तं विलक्षणं देहदेश-

---

स्मरण करता है । वह उसको उपाय नहीं समझता है, किन्तु जैसे भगवान् को सबसे अधिक अपने प्यारे समझता है, उसी तरह प्रभु के गुणों को और नाम तथा स्मरण को भी अपने प्यारे जानता है । इसी से शरणागवि नाम उपाय करना सहज है, और इस जीव के लायक है, प्रपत्ति (शरणागति) दो प्रकार की है एक आर्तप्रपत्ति दूसरी दृप्तप्रपत्ति ॥ ३२ ॥

भगवान् की (निर्हेतुककृपा) बिना किसी कारण के दया इस जीव पर जब होती है तब शास्त्र के अभ्यास और श्रेष्ठ आचार्य के उपदेश से इसको ज्ञान होता है, फिर यह जीव गोविन्द के गुणों पर मोहित होकर यह चाहने लगता

देशिकांश्चप्राप्तुमाशाधिवयेन श्रीवेङ्कटनायकस्य गर्भजन्मजराधिव्याधिमरणादि ------ निवर्तकत्वात्, श्रीवेङ्कटनायक ! गत्यन्तरशून्यो दासोऽहं, वेङ्कटाचलवासिने नमः, इति पूर्णप्रपत्तिं कृत्वा 'बहु दर्शयित्वा नाशयसि' 'प्रथमाहंगन्तुन्नानुजानामि' एतत्तीर

है, कि मेरा यह अधम शरीर कब छूटेगा, और इस देश को छोड़कर कब उस देश में पहुँचूंगा। जहाँ पर मेरे प्राणनाथ श्रीश्यामसुन्दर के दिव्य गुणों की सदा याद करने के वास्ते दिव्य शरीर मिलेगा, और मेरे नाथ के गुणों को गान करने वाले भक्तों की मुझे प्राप्ति होगी हे नाथ ! आप के गुणों का (अनुभव) याद करने में विघ्न करने वाला यह शरीर और यह देश और यहां के रहने वाले विषयभोगी मनुष्यों का संग अब मुझे अच्छा नहीं लगता, इस प्रकार अत्यन्त दुखी होकर मानों श्रीहरि से झगड़ा कर रहा है, इस को आर्तप्रपत्ति कहते हैं। जैसा किसी हरिदास ने कहा है, श्रीवेंकटनायक मेरे गर्भ जन्म जरा (आधि) मन का दुख (व्याधि) अनेक रोग और मरणादिकों को दूर करेंगे। मैं श्रीवेंकटनायक का दास हूँ और सब उपायों से रहित हूँ, श्रीवेंकटाचलवासी ही मेरा उपाय

मारुह्य श्रान्तोस्मि प्राप्तुम्' 'कृपांकुरु लक्ष्म्या शापितोऽसि' 'अथाऽहंगन्तुन्नानुजानामी' तिप्रतिरुध्यप्राप्तिः ।। ३३ ।।

दृप्तप्रपत्ति र्नाम शरीरान्तरप्राप्तौ स्वर्गनरकानुभवेषु च विरक्तभीत्युत्पत्त्या तन्निवृत्त्यर्थं भगवत्प्राप्त्यर्थं च सदाचार्योपदेशक्रमेणोपायस्वीकारङ्कृत्वा

है, इस प्रकार प्रभू की पूर्ण (पूरी) शरणागति करके फिर संसार के पदार्थों को देखकर कहा, कि हे नाथ मुझको ससार के बहुत पदार्थ दिखला कर नाश करते हो क्या ? मैं इस संसार समुद्र के तीर पर आकर थक गया, अब आप अपने पास प्राप्त होने को मेरे ऊपर कृपा कीजिए। मैं आपको लक्ष्मीजी की शपथ (कसम) दिलाता हूँ, अब मैं चलना नहीं जानता किस मार्ग से आपके पास पहुँचूँगा । ३।।

जिस समय इस जीव को ऐसा ज्ञान हो जाता है, कि मुझको दूसरा शरीर नहीं धारण करना पड़े, तब मनुष्य शरीर को छोड़कर देवता का शरीर धारण करके स्वर्ग का सुख भोगना भी इसको अच्छा नहीं है क्योंकि-गीता में कहा है—'ते तम्भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणपुण्ये मर्त्यलोकं-विशन्ति' ।। अर्थ--

विपरीतप्रवृत्तिनिवृत्तः वेदविहितवर्णाश्रमानुष्ठानं भगवत्कैङ्कर्य्यञ्च वाचिकमानसिककायिकैः कैङ्कर्यं यथाबलमनुष्ठायेश्वरस्य शेषित्वनियन्तृत्वस्वामित्व-शरीरित्वव्यापकत्वधारकत्वरक्षकत्वभोक्तृत्वसर्वज्ञत्व सर्वशक्तित्वसर्वसम्पूर्णत्वावाप्तसमस्तकामत्वाकारान्

इस मनुष्य लोक में विषयसुख भोगने की इच्छा से दान यज्ञादि कर्मों के करने वाले जीव स्वर्गलोक में जाकर सुख भोगते हैं। जब सुख भोगने से उनके पुण्य का नाश हो जाता है, तब इसी मनुष्य लोक में वे फिर आ जाते हैं, और फिर जन्म लेना मरना इत्यादि घोर दुःखों को भोगते हैं। इससे स्वर्गादिलोक के सुख भोगने में वैराग्य हो जाता है। और बुरे कर्म करने से नरक में जाकर अनेक दुःख भोगने पड़ेगें, ऐसा समझ कर इस जीव को भय होता है, तब भय दूर करने को और श्रीनारायण की प्राप्ति के वास्ते श्रेष्ठ आचार्य्य (गुरु) ने इसको जो उपाय बताया है, और जिन कर्मों से श्रीगोविन्द की याद करना भूल जाय ऐसे बुरे कर्म करना छोड़ देता है। और वेद के कहे हुए जो कर्म हैं उनको अपनी जाति और [आश्रम] ब्रह्मचर्य १ गृहस्थ २ वाणप्रस्थ ३ संन्यासी इन में किसी आश्रम में ही उसी

स्वस्य तच्छेषत्वनियाम्यत्वस्वत्वशरीरत्वव्याप्यत्वधा-र्यत्वरक्ष्यत्वभोग्यत्वाज्ञत्वाशक्तत्वापूर्णत्वाकिञ्चन्य-त्वरूपाकारांश्चाऽनुसन्धाय 'निर्वतय दुःख म्मा वा निवर्तकान्तरसद्भाववाञ्चास्मी' तिप्रकारेणोपायवि-षयसर्वभरांञ्च तद्विषयेन्यस्य निर्भयतया वर्ततइति ३४

के लायक करता हुआ भगवान् के कैङ्कर्य्य को (सेवा को) करता है। अर्थात् वाणी से नारायण के दिव्य नामों को लेता है, मन से प्रभु के गुण और परम मनोहर छबि को याद करता है, शरीर से श्रीश्याम सुन्दर की श्रीमूर्ति की अनेक तरह से सेवा करता है कि नारायण ही (शेषी हैं) मुझको अपने नियमों में चलाते हैं, और वे व्यापक है मुझको धारण करने वाले हैं भोक्ता हैं। (भोगने वाले) सब के जानने वाले हैं। उनमें सब तरह की शक्ति है, सब तरह से पूर्ण हैं उनको सब तरह के पदार्थ प्राप्त हैं। इस तरह से प्रभु के गुणों को याद करता है, और अपने को ऐसा समझता है कि मैं प्रभु का शेष (अङ्ग) हूँ उनके नियमों में चलता हूँ उनका पदार्थ हूं, उनके शरीर की तरह उनके आधीन हूं उनके स्वरूप के एक देश में रहता हूं। उनके धारण करने योग्य और रक्षा करने लायक हूं, उनके भोगने लायक हूं और में कुछ नहीं जानता हूं किसी काम के करने को समर्थ (लायक)

आचार्याभिमानो नाम एतेष्वेकस्मिन्नपिशक्ति-रहितं कञ्चन तस्य च्युति मेतस्य प्राप्ता वीश्वरस्य जायमानां प्रीतिं चाऽनुसंधाय स्तनन्धयप्रजाया व्याधौ सति तं स्वदोषत्वेनाऽनुसंधाय स्वयमौषध-

---

नहीं हूँ सब प्रकार के गुणों से रहित हूँ। मेरे पास ऐसी कोई चीज नहीं कि जिससे मैं श्रीगोविन्द की सेवा कर सकूँ। इस तरह से यह जीव अपने को समझ कर अपने परम प्रिय भक्तवत्सल श्रीश्यामसुन्दर से यह प्रार्थना करता है कि हे नाथ! आप मेरे दुःखको दूर करें वा न करें परन्तु मैं और किसी दूसरे से अपने दुःख के दूर करने की प्रार्थना नहीं करूँगा। इस तरह सब उपायों का भरोसा छोड़कर श्रीमन्नारायण को ही अपना रक्षक समझ कर उनके विसें ही अपनी रक्षा का भार रखकर यह निर्भय होकर रहता है, इसी को दृप्त प्रपन्न कहते हैं, और इस जीवकी की हुई शरणागति को दृप्तप्रपत्ति कहते हैं ॥ ३४ ॥

संसार के बन्धन से छूटने के वास्ते शास्त्र में ईश्वर की भक्ति करना उपाय कहा है परन्तु भक्ति करने का अधिकारी वह ही है जो अपनी जाति और आश्रम के लायक सब कर्म करता हो, जो जीव विद्या और कर्म करने की शक्ति से हीन हो, वह प्रभू की शरणागति करने से भगवान् को

सेवाकर्त्री मातेव एतन्निमित्तं स्वयमेवोपायानुष्ठान कृत्वा रक्षितुं शक्तस्य परमदयालोर्महाभागवतस्याऽभिमाने ऽन्तर्भूय उचितोपायं ज्ञापयतिचेत् 'तम्पश्याम' इत्युक्तप्रकारेण सकल प्रवृत्तिनिवृत्तीनान्तादधीन्यापादनं । भगवतःस्वयं प्राप्यत्वेऽपि सकल–

प्राप्त हो सकता है । शरणागति दो प्रकार की होती है, एक आर्त की दूसरी दृप्त की—इनका स्वरूप कह चुके हैं, जो जीव भक्ति और शरणागति इन दोनों के करने में असमर्थ हो ऐसे जीव को श्रेष्ठ आचार्य्य के सम्बन्ध से भगवान् की प्राप्ति हो सकती है । आचार्य की परम दया उस जीव पर अवश्य हो जाती है जो अपने सरल [सूधे] स्वभाव से आचार्य की सेवा करता है, और कोई उपाय अपने उद्धार करने का मन में नहीं समझता है, आचार्य्य [गुरु] का सबके ऊपर दया करने का स्वभाव ही है, जब सब प्रकार से हीन शिष्य को देखते हैं और यह जानते है कि इस जीव को हमारे बिना और कौन सुधारेगा, इसके नाश होने में हमारी हानि होगी, और इसकी प्राप्ति होने से ईश्वर की प्रीति होगी, तब आचार्य ऐसे जीव का उद्धार होने का आप उपाय करते हैं, जैसे दूध पीने वाले बालक के शरीर में रोग हो

देवतान्तर्यामित्वेन प्राप्यत्ववत् अस्याऽऽचार्याभिमानस्य स्वातन्त्र्येणोपायत्वेऽप्यथ सर्वेषामुपायानां सहकारी स्वतन्त्रश्च भवति ।। ३५ ।।

विरोधिवर्गे स्वरूपविरोधी नाम देहात्माभिमानमन्यशेषत्वं स्वस्वातन्त्र्यं च ।। ३६ ।।

जाता है तो माता यह जानती है, कि इस बालक के शरीर में मेरे ही दोष से रोग पैदा हुआ है, तब माता बालक के रोग दूर करने को आप ही औषध खाती है। इस प्रकार अपने आप ही उपाय बन दीन जीव की रक्षा करने में समर्थ परम दयालु और परमभागवत आचार्य में ऐसा प्रेम करना, कि जिससे आचार्य्य यह समझ लें कि यह जीव हमारा ही है। ऐसे आचार्य के सदा आधीन रहना ही आचार्याभिमान कहाता है। जैसे भगवान् स्वयं प्राप्य [आप ही फल रूप] है तब भी सब देवताओं के अन्तर्यामी [भीतर विराजते हैं] ऐसा जानकर देवताओं के द्वारा भी भगवान् ही का पूजन करना है इसी तरह आचार्य की उपासना करना ईश्वर की प्राप्ति में स्वतन्त्र [खास] भी उपाय हो जाता है। और जो भगवान् की प्राप्ति [मिलने] के भक्ति और प्रपत्ति [शरणागति] रूप उपाय हैं उनका सहायक हो जाता है।। ३५

परत्वविरोधीनाम देवतान्तरेषु परत्वप्रतिपत्तिः समत्वप्रतिपत्तिः क्षुद्रदेवताविषयेषु शक्तियोगप्रतिपत्तिः अवतारेषु मनुष्यत्वप्रतिपत्तिः अर्चावतारेष्वशक्तिप्रतिपत्तिश्च ॥ ३७ ॥

पाँच प्रकार के विरोधी होते हैं, यह पहिले कह चुके हैं, उनमें स्वरूप विरोधी उसको कहते हैं, कि जैसे देह को ही आत्मा समझ लेना अथवा भगवान् को छोड़कर किसी और का ही दास बन जाना या यह समझ लेना मैं स्वतन्त्र हूँ ॥ ३६

यह जीव देह स्वरूप नहीं है देह में रहता है, और किसी का दास नहीं है परमात्मा का दास है, स्वतन्त्र नहीं सदा परमात्मा के आधीन है, इसको और तरह से समझना स्वरूप का विरोधी होता है फिर उसको परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती श्रीलक्ष्मीकान्त [नारायण] को छोड़कर किसी और देवता को परतत्व (ईश्वर) मानता है, अथवा और देवताओं के बराबर ही नारायण को समझता है और क्षुद्र (छोटे) देवताओं में अपने उद्धार करने की शक्ति समझता है, और श्रीरामचन्द्र श्रीकृष्णचन्द्र अवतार को जो मनुष्य मानता है। और भगवान् के अर्चावतार में [प्रतिष्ठा की

पुरुषार्थविरोधी नाम पुरुषार्थान्तरेऽविच्छा स्वाभिमतभगवत्कैंकर्य्येऽवनिच्छा च ।। ३८ ।

उपायविरोधी नाम उपायान्तरवैलक्षण्यप्रतिपत्तिः उपायलाघवं उपेयगौरवं विरोधिवाहुल्यं च ।। ३९ ।।

हुई भगवान् की मूर्ति में] कुछ शक्ति नहीं है ऐसा मानता है, इसको परत्वविरोधी कहते हैं, ऐसे मानने वाले अज्ञानी जीव को ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती ।। ३७ ।।

जब यह जीव श्रीगोविन्द की चरण सेवा को छोड़कर और पदार्थ की चाहना करने लगता है अथवा अपने परम-प्रिय भगवान की सेवा में इच्छा नहीं करता है तब इसको भगवान् की प्राप्ति नहीं हो सकती इसी को पुरुषार्थविरोधी कहते हैं । ३८ ।।

शास्त्र में कहे हुए भक्ति शरणागति रूप उपाय को त्याग कर और उपाय को अच्छा मानना, अथवा भगवान् बड़े योगिराजों को कठिन तप करने से भी नहीं मिलते हैं, तो भक्ति और शरणागतिरूप छोटे उपाय से कैसे मिल जायँगे भगवान की प्राप्ति होने में अनेक तरह के विघ्न आ जाते हैं, ऐसा विचार करना, इसको उपाय विरोधी कहते हैं । ऐसे विचार करने वाले जीव को भी ईश्वर की

अनुतापशून्यगुरुस्थिरभगवदपचारभागवताप-- चारासह्यापचारप्रभृतयस्सर्वे विरोधिन इत्युच्यन्ते ॥ ४०

अन्नदोषः ज्ञानविरोधी ॥ ४१ ॥

प्राप्ति नहीं होती, क्योंकि 'मद्भक्तायान्तिमामपि' मेरे भक्त मुझको प्राप्त होते हैं 'मामेकं शरणं व्रज' एक मुझको ही शरण प्राप्त हो अर्थात् मुझको ही अपनी रक्षा करने वाला जाने इत्यादिक माता पिता से सहस्र गुण [हजार गुना] हित करने वाले श्री गोविन्द के कहे हुए उपायों में से उस जीव का विश्वास दूर हो गया ॥ ३९ ॥

बहुत काल तक बना रहै ऐसा भगवान् का भारी अपराध करना और ऐसे अपराध के करने पर भी अपने मन में उसका अनुताप [पछताव] नहीं करना, कि हाय मैंने बुरा किया और जो अपराध भगवान् भी नहीं सह सकें ऐसा भगवान् के भक्तों का अपराध करना ये सब विरोधी कहाते हैं। ये जीव को प्रभु चरणों की प्राप्ति नहीं होने देते हैं ॥ ४० ॥

अन्न का दोष ज्ञान का विरोधी है, जैसे मसूर अन्न शास्त्र में अपवित्र कहा है, और चमार आदि से लेकर जो हीन जाति के मनुष्य हैं उनका और जो अत्यन्त पाप करने वाले मनुष्य हैं उनका अन्न भी नहीं खाना चाहिए, उनके

सहवासदोषो भोगविरोधी ।। ४२ ।।

एवमर्थपञ्चकज्ञानोत्पत्त्या मुमुक्षोः संसारे वर्तमानस्य चेतनस्य मोक्षसिद्धिपर्य्यन्तं संसारासक्रान्त्यर्थं कालक्षेपकरणप्रकारः वर्णाश्रमानुरूपमशनाच्छादने सम्पाद्य "यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवता" इत्युक्तप्रकारेण सकलपदार्थानपि भगवद्विषये निवेद्य यथाबलं भागवतकिञ्चित्कारङ्-

---

अन्न खाने से और शास्त्र से मना किया गया अन्न खाने से भी ज्ञान का नाश हो जाता है ।। ४१ ।।

और पाप करने वाले मनुष्यों का संग भी नहीं करना चाहिए पाप करने वाले मनुष्य के संग से ज्ञान का नाश होता है ।। ४२ ।।

इस प्रकार मोक्ष के चाहने वाला मनुष्य जब तक इस का मोक्ष न हो तब तक कहे हुए पाँच पदार्थों का विचार करता हुआ ही अपने समय को व्यतीत करै (बितावै) जिससे फिर यह जन्म मरणादि अनेक दुःखों से भरे हुए संसार में न पड़ जाय । मोक्ष के चाहने वाला जीव अपने वर्ण और आश्रम के योग्य वस्त्र पैदा करे, और जो कुछ अन्न वस्त्र मिले,

कृत्वा देहधारणमात्रं प्रसादप्रतिपत्त्या उज्जीवेत् । कथंचित्तत्त्वज्ञानोत्पादकस्याऽऽचार्य्यस्य सन्निधौ किञ्चित्कारेण तदभिमतो वर्तेत ।। ईश्वरसन्निधौ स्वस्य नीचत्वमनुसन्दधीत ।। ४३ ।।

आचार्य्यसन्निधौ स्वस्याज्ञानमनुसन्दधीत ।। ४४ ।।

भागवतसन्निधौ स्वस्य पारतन्त्र्यमनुसंदधीत ।। ४५ ।।

उसको भगवान् के अर्पण करके जैसी शक्ति होय वैसा भगवान् के भक्तों को देकर अपने देह का धारण हो सके, उस प्रकार प्रसाद समझकर उस अन्न को ग्रहण करें, भगवान् के भक्त को जैसा अन्न मिलै प्रभू उसी अन्न को अङ्गीकार कर लेते हैं ।। तत्वज्ञान को पैदा करने वाले आचार्य के पास कुछ सेवा करके, मोक्ष चाहने वाले मनुष्य को रहना चाहिये कि जिससे आचार्य की उसके ऊपर कृपा बनी रहै ।।४३।।

जब आचार्य [गुरू] के पास बसै तब शिष्य अपने मन में ऐसा समझता रहै कि मैं अज्ञानी हूँ आचार्य्य ही मेरा उद्धार करेंगे ।।४४।।

और जब भागवतों [भक्तों] के पास जाय, तब ऐसा

संसारिणामग्रे स्वव्यावृत्तिमनुसन्दधीत ।। ४६ ।।
प्राप्यत्वरा प्रापकेऽध्यवसायः विरोधिनि भयम्
इतरविषयेष्वरुचिः स्वरूपज्ञानम् स्वरक्षणेऽशक्तिश्च
यथानुवर्तेरन् तथा ज्ञानानुष्ठानाभ्यां युक्तोवर्तेत ।

समझै कि ये भागवत (विष्णु भक्त) मेरे स्वामी है, मैं इनके आधीन हूँ ।। ४५ ।।

और जब मुमुक्षु (मोक्ष चाहने वाला) संसारी मनुष्यों के पास जाय, तब अपने मनमें ऐसा समझे कि ये संसारी मनुष्य है, वोही काम करते हैं, जिससे फिर इस संसार में जन्म लेंगे और मरेंगे, इनको विषय भोग और स्त्री पुत्रादिक प्यारे हैं, जिनके मोह से अनेक प्रकार के दुःख इनको भोगने पड़ेंगे और मुझको श्रीश्यामसुन्दर के परम मनोहर चरण प्यारे हैं, जिनके ध्यान से मैं इस संसार समुद्र से पार हो जाऊँगा । इससे इन संसारी मनुष्यों के संग से मुझको सदा डरना चाहिए इनका संग करना मुझको बहुत बुरा है । यदि मुमुक्षु (मोक्ष चाहने वाला) जीव इस प्रकार से नहीं समझैगा तो इसकी भी वही दशा होगी, जैसी शौभरि ऋषि की हुई थी । शौभरि ऋषि श्रीयमुनाजी में स्नान करके सन्ध्या कर रहे थे, वहाँ पर मछली अपने बच्चों के साथ खेल रही

एवम्भूत: ईश्वरस्य महिषीभ्यो नित्यमुक्तेभ्यश्चा-
ऽत्यन्ताभिमतो भवेत् ।। ४६ ।।

थी, उन बच्चों को देखकर शौभरि ने भी राजा मान्धाता की पचास कन्याओं से विवाह किया, फिर वह भी योगी थे इससे उनके पाँच हजार संतान हुईं, अन्त में उनको बहुत पछताना पड़ा ।। ४६ ।।

मोक्ष चाहने वाले मनुष्य को चाहिए, कि अपने मन में भगवान के प्राप्त होने की त्वरा (जल्दी) करता रहै, और भगवान् की प्राप्ति के उपाय की सदा चिंता करता रहै, और भगवान् की प्राप्ति के विरोधी से डरता रहै, और नारायण के सिवाय और किसी पदार्थ में प्रीति न करै, अपने देह में भी प्रीति न करैं, और अपने स्वरूप को विचारता रहै, और यह समझता रहै, कि मैं अपनी रक्षा नहीं कर सकता मोक्ष चाहने वाले मनुष्य को इस प्रकार के ज्ञान और अनुष्ठान करने चाहिये कि जिससे ऊपर कहे हुए गुण इसमें बने रहें, इस प्रकार का जीव ईश्वर को नित्य पार्षद और मुक्त हुए जीव तथा श्रीलक्ष्मीजी से भी अधिक प्रिय हो हो जाता है ।। ४७ ।

।। इत्यर्थपञ्चकम् भाषानुवादसहितम् समाप्तम् ।।

श्रियै नमः

* प्रपन्नपरित्राणम् *

लोकाचार्याय गुरवे कृष्ण पादस्य सूनवे ।
संसारभोगिसंदष्ट जीव जीवातवे नमः ॥

मुमुक्षोर्मोक्षार्थं सर्वेश्वरमाश्रितस्यानन्यगति-त्वाकिञ्चन्येऽपेक्षिते ।

अनन्यगतित्वं नाम "निवर्तय दुःखं मा वा निवर्त-कान्तरशून्योऽहमिति" प्रकारेण सर्वेश्वरं विनाऽन्यः कश्चन रक्षकोनास्तीति स्थितिः ।

संसार सर्प से ग्रसित जीवों को जिलाने वाले श्रीकृष्ण-पाद के सुपुत्र लोकाचार्य स्वामी को नमस्कार स्वीकार हो।

श्रीसर्वेश्वर का आश्रयण करने वाले चेतन को अनन्य-गतित्व और अकिञ्चनत्व अपेक्षित है।

अनन्यगति के माने-"दुःख निवारण करो चाहे न करो मेरा दूसरा कोई रक्षक नहीं है" इस कथन के अनुसार

भ्रातृपुत्रमातापितृब्रह्मरुद्रादयो रक्षकाः न भवन्ति किमिति चेदुच्यते ।

भ्रातरो रक्षका न भवन्तीति वालिविषये रावणविषये च द्रष्टव्यम् ।

पुत्राः रक्षकाः न भवन्तीति रुद्रविषये कंसविषये च द्रष्टव्यम् ।

मातापितरौ न रक्षकौ भवत इति कैकेयिविषये हिरण्यविषये च द्रष्टव्यम्

श्रीसर्वेश्वर के सिवाय दूसरा कोई भी रक्षक नहीं है, अतः रक्षकान्तर से व्यावृत होकर रहना ।

भ्राता, पुत्र, माता-पिता ब्रह्मा, रुद्र इत्यादिक रक्षक नहीं है क्या ?

भाई रक्षक नहीं होते इसके दृष्टान्त में बालि और रावण को देख लो (सुग्रीव और विभीषण ने श्रीराम से मिलकर कैसा भाईचारा निभाया ।)

पुत्र रक्षक नहीं होते, इस बात को रुद्र और कंस के बर्ताव से देख लो (रुद्र ने अपने पिता ब्रह्मा का मस्तक छेदन किया और कंस ने अपने पिता उग्रसेन को कारागृह में डाल दिया ।]

मातापितृभ्यां यौवनविरोधीत्युपेक्षणम्

क्षामकाले मनुष्यं दृष्टवा गुल्वे स्थापनं मूल्य-मुक्त्वा विक्रयणम्

विपदागमेऽनावतुं चिन्तनमर्थक्षेत्राद्यर्थं हिंसनम्

माता-पिता भी रक्षक नहीं हैं, इस विषय को माता कैकेयी और पिता हिरण्यकशिपु के आचरण से देख लो। [माता कैकेयी ने पुत्र राम को वनवास दे दिया, जिससे उसके पुत्र भरत को अत्यन्त कष्ट हुआ, पिता हिरण्यकशिपु ने अपने पुत्र प्रह्लाद को मारने तक का उद्योग किया।]

माता-पिता के द्वारा, युवावस्था का विरोधी मानकर पुत्र की उपेक्षा कर देना [धाई द्वारा ही पुत्र का पालन-पोषण कराना]।

विपत्ति [वैधव्य एवं अविवाहित] काल में हुए पुत्र को इधर उधर मनुष्यों की दृष्टि बचाकर घास-फूस में चुपचाप रख देना अथवा मूल्य बताकर बेच देना।

आपत्ति आने पर अनादर करने की सोचना, जमीन-जायदाद के पीछे हिंसा की सोचना।

"मरणावस्थायामज्ञानेन द्रव्यं निक्षिप्तं चेद्वदवदेतिपरितः स्थित्वा" इत्युक्तप्रकारेणेश्वरं स्मृत्वा तीरे यथा न प्राप्नुयात्तथा व्याकुलीकरणं मारणमित्यादीनि क्रियन्ते ।

स्त्रीणां भर्तारो रक्षका न भवन्तीतिधर्मपुत्रादिविषये नलविषये च द्रष्टव्यम् ।

एतेषां रक्षकत्वाभावेऽपि लोकानां दृष्टिप्रदौ चंद्रादित्यौ किमिति रक्षकौ न भवत इति चेदुच्यते ।

मरणासन्नदशा में चारों ओर घेरकर बैठ जाते हैं और पूछते हैं कि भूल से कभी द्रव्य रक्खा रह गया हो तो बता दो अपने करूणापूर्ण आलाप और विलाप द्वारा उसके चित्त को ऐसा आकर्षित कर लेते हैं, जिससे कि वह भगवत्स्मरण कर भगवान को प्राप्त न कर सके ।

पति स्त्रियों के रक्षक नहीं होते इस बात को युधिष्ठिरादिक एवं नल के बर्ताव (द्रौपदी के चीरहरण और दमयन्ती को अर्धनग्न वन में छोड़ देने) से देख लो ।

अस्तु ! इनमें रक्षकत्व न सही परन्तु समस्त लोकों के आलोक देनेवाले चन्द्रमा और सूर्य में भी रक्षकत्व नहीं है क्या?।

तौ चेश्वराज्ञाभीत्या स्वेच्छासञ्चारमप्राप्य घटिकाभागं कृत्वानियमेनोदयास्तमयौ प्राप्य हिरण्य-रावणादिहस्तगतौ तेषां नीचवृत्तीः कुर्वन्तौ संचरन्तौ कौचिदिति रक्षकौ न भवतः।

लोकत्रयपालकश्चेन्द्रः कदाचिदस्मत्पदच्युति-र्भवतीतिभीतः शापोपहतो ब्रह्महत्याभिभूत इन्द्रजि-द्धस्तगतो महाबलिप्रभृतिभिरपहृतैश्वर्यः, स्रवद-श्रुनेत्रो नम्रशिराः संचरतीति रक्षको न भवति।

वे "चन्द्रमा और सूर्य" दोनों ईश्वर की आज्ञा के उल्लं-घन के भय से स्वेच्छाचारी न होकर ठीक समय पर उदित और अस्त होने से स्वयं पराधीन हैं और हिरण्यकशिपु तथा रावण के वश में आकर उनकी सेवा सुश्रुषा में लगे रहे, अपनी ही रक्षा नहीं कर पाये, अतः वे रक्षक नहीं हैं।

तीनों लोकों के पालन करने वाला इन्द्र अपना पद जाने कब छिन जाय इससे भयभीत, गौतम के शाप से ग्रस्त, ब्रह्महत्या (वृत्रासुरवध) से व्याकुल मेघनाद के बन्धन से आबद्ध, महाबलि इत्यादि द्वारा ऐश्वर्यभ्रष्ट किया गया, अतः आँखों से आँसू बहाता नीचे गर्दन झुकाकर समय बिताने-वाला रक्षक नहीं है।

ब्रह्मा च मधुकैटभाभ्यां क्लेशं प्रापितोऽपहृतवेदो, नेत्रभ्रष्टो, धनभ्रष्ट इति भूमिमुल्लिखन् रुद्रहस्तेन छिन्नशिराइति न रक्षकः।

रुद्रश्च सकल प्राणिसंहारैकवृत्तिकः पिपासया परि-श्रान्तानां मुखेषु हुताशनक्षेपकइवातिक्रूररूपः स्वाश्रितान् छित्वा देहि, दग्ध्वा देहीति क्रूरदास्यं कारयिता स्वाश्रितं वाणासुरं मस्तककुसुमम्लानिर्यथा न स्यात्तथा रक्षेयमिति प्रतिज्ञां कृत्वा स्वस्माअञ्जलि-

---

ब्रह्मा भी मधु और कैटभ दैत्यों द्वारा क्लेश को प्राप्त, हयग्रीव दैत्य ने जिससे वेदों का अपहरण कर लिया, अतएव ज्ञानहीन, धनहीन होने से किंकर्तव्यविमूढ़ होकर भूमि कुरेदने वाले और कामावेश में स्वपुत्री सरस्वती के पीछे दौड़ने पर अपने पुत्र रुद्र के हाथ से जिसका मस्तक छेदन हुआ अतः वह रक्षक नहीं है।

महादेव भी जिसकी मस्तक प्राणियों के संहार करने की ही ड्यूटी है, प्यास के मारे घबड़ाये हुए के मुख में अँगारे डालने के सदृश क्रूर वेष, अपने आश्रितों से "मस्तक काटकर भेंट में दो अथवा अग्नि में मस्तकों को हवन करके दो" ऐसी क्रूर दासता कराने वाले, अपने आश्रित वाणासुर

कृतवतां कराणामर्कवनच्छेदनमिवच्छेदनं दृष्ट्वा प्राणस्थितौ लवणवाणिज्येन जीवाम इतिमुख नयन-माच्छाद्य गतवान् लोकगुरोस्स्वपितुर्ब्रह्मणो मस्तकं छित्वा पातकी सन् स्वाधिकृते ग्रामे स्वय-मुपद्रवं कृत्वा प्राप्तश्रृङ्खला: संचरन्त इव सकपा-लहस्त: प्रत्यनावृतद्वारं प्रविश्य स्व प्रकाशयन् संचरितवांश्चेति न रक्षको भवति ।

अथार्थो रक्षको भवेत्किमिति निरूपणे

के "मस्तक के फूल मलीन न हों ऐसी रक्षा करूँगा" इस प्रकार प्रतिज्ञा करके भी अपने (शिव) को ही संपुटित होकर प्रणाम करने वाले हाथों को अकौवा के वन जैसे कटते देख "जीते रहेंगे तो नमक के व्यवसाय से भी पेट भर लेंगे" इस कहावत के अनुसार मुख छिपाकर और आँख बचाकर चले जाने वाले, लोक पितामह अपने पिता ब्रह्मा का मस्तक छेदन कर पातकी बन अपने अधिकृत गाँव में उपद्रव कर अपने हाथों में हथकड़ी डलवाने वाले के सदृश हाथ में ब्रह्मकपाल लिये प्रत्येक दर्वाजे में जा जाकर अपने आपको प्रकाशित करने वाले रक्षक नहीं है ।

अस्तु ? धन को रक्षक माना जाय तो उसे चोर चुरा

तस्करापहार्यत्वात्, कामापहार्यत्वात्, व्याध्यप हार्यत्वात्, ज्ञात्यपहार्यत्वात् परैर्विरुध्य विषभक्षणं कृत्वा स्वेनैव मरणे हेतुत्वाच्च रक्षको न भवति।

ईश्वरस्तु मातापितृभ्यांत्यक्त दशायामपि "पश्चात्स्थित्वा दासस्य बन्धुस्सन् वर्धयित्वा" इत्युक्तप्रकारेण स्वस्वरूपं विहाय रूपान्तरमंगीकृत्य मातृमुखं दर्शयित्वा मृदुवचनानि वदन् मातॄणां भर्तॄणाञ्चो-

---

ले जाते हैं, कामनाओं की पूर्त्ति में व्यय हो जाता है, व्याधियों के निवारण में खर्च हो जाता है, दूसरों से विरोध (खरीद) कर विष खाकर अपने आप मरने का कारण बन जाता है, अतः धन भी रक्षक नहीं है।

सर्वेश्वर तो माता पिता द्वारा छोड़ देने पर भी "अन्तर्हित होकर मुझे स्वयम् ही बढ़ाया" इस कथन के अनुसार अपने स्वरूप परत्व की परवाह न करके रूपान्तर से मातृप्रयुक्त सा वात्सल्य दिखाकर सांत्वना के बचन बोलते हुए "जैसे स्वभक्ता द्रौपदी के केश वन्धनार्थं" वान्धवों एवं पतियों युधिष्ठिरादिकों की उदासीन दशा में भी अभिमत होने के कारण स्वयमेव कण्ठ में पत्रिका बाँधकर दूत का

दासीनदशायां स्वयमेवाभिमत्य कण्ठे पत्रिकां बद्ध्वा दौत्यं कृत्वा भ्रू विक्षेप स्थले रथं संचार्य वक्षसि बाण-मारोप्य मृतान् जीवयित्वा नारायणत्वप्रयुक्तसम्ब-न्धेनोदरचापल्येनान्तः स्थित्वा सत्तां रक्षन् स्थित इत्ययमेव सर्वेषां रक्षको भवति ।

अथाकिञ्चन्यं नाम---कर्मज्ञानभक्तिषु तद्धेतु-भूतात्मगुणेषु चान्वयं बिना तद्विपरीतैः परिपूर्ण-तयावस्थितिम्, स्वस्वरूपस्य सर्वप्रकारेण

कार्य किया और जहाँ भौंहें तरेरी जाँय एवं इशारे हों कि भगव न् कृष्ण हमारे विरुद्ध अर्जुन का सारथ्य कर रहे हैं उस स्थल में रथ का संचार किया एवं बाणों को अपने वक्षस्थल में स्वीकार किया और मरे हुयो को जिलाया" वैसे ही नारायण प्रयुक्त स्व स्वामी सम्बन्ध के कारण तथा वात्सल्य भाव की प्रेरणा से अन्तर्हित होकर सत्ता की रक्षा करते रहते हैं अतः सर्वेश्वर ही सबके रक्षक हैं ।

आकिञ्चन्यं माने-कर्मज्ञान और भक्ति में तथा उनके कारण भूत शमदमादि आत्म गुणों में अपने सम्पादकत्व के अभिमान को छोड़कर भगवत्कृपा उपलब्ध मानना, तथा अपनी रहनी को शमदमादि गुणों से विपरीत दुर्गुणों से परिपूर्ण मानना, और अपने सर्वरूप को सर्वभावेन

नारायणस्यात्यन्तपरतंत्रतया स्थिति चानुसंधाय अस्मत्कार्यस्य वयं प्राप्ता न भवाम इति स्थितिः।

एतदुभयवतो नारायणमेवोपायोपेयत्वेनाश्रयणान् निर्भरतया स्थितस्य शरीरावसानकाले प्राप्तिसमये 'नयामि परमंपदमित्युक्तप्रकारेण' सर्वेश्वरस्वयमेव स्वामीसन्नागत्यार्चिरादिमार्गेण परमपदं नीत्वा नित्यमुक्तैरेक पंक्तौ स्थापयित्वा नित्यकैङ्कर्यं दत्वा दयां कुर्यात् ।

नारायण के अत्यन्त परतन्त्र मानना "अपने कार्य के निर्वहन में भी हमारा अधिकार नहीं है" ऐसा मानना ।

इन "अनन्यगतित्व एवं अकिञ्चनत्व" दोनों के कारण नारायण को ही उपाय और उपेय रूप से वरण कर भग-वान् के चरणारविन्दों में आत्म भार सौंप देने के कारण निर्भरत्व का अनुसंधान करने वाले प्रपन्नों के शरीरावसान के समय परम पद प्राप्त्यर्थ "मैं स्वयं अपने भक्त को स्मरण करके अर्चिरादि मार्ग द्वारा परम पद ले जाता हूं और नित्य मुक्तों के साथ पंक्ति में शामिल करके नित्य कैङ्कर्य दे देता हूं यह बात भगवान ने स्वयम् कही है अतः अवश्य कृपा करेंगे ।

।। इति टीकासमेतं प्रपन्नपरित्राणम् समाप्तम् ।।

॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥

॥ प्रमेयशेखरः ॥

निर्हेतुकभगवत्कटाक्षद्वारा अज्ञातसुकृत भवति। तद्द्वारा अद्वेषो भवति । तस्माद्भगवद्भागवतविषयेष्वाभिमुख्यं भवति । अभिमुख्यभवनानन्तरमेव त्याज्योपादेयविभागज्ञाने कौतुकं भवति । तेन सात्त्विकसंभाषणं भवति । तेन सदाचार्यसमाश्रयणं भवति । तद्भवनमात्र एव त्याज्योपादेयनिश्चयो भवति । तद्भवनमात्र एव प्राप्यान्तरेषु वैराग्यं

भाषार्थ--निर्हेतुकभगवत्कटाक्ष से अज्ञातसुकृत होता है । उससे अद्वेष होता है । तिससे भगवद्भागवतों के बिषय में सन्मुखता होती है । फिर त्याज्य और उपादेय के विभाग के जानने में इच्छा होती है । तिससे सात्विकजन संभाषण होता है । तिससे सदाचार्य समाश्रयण होता है । तिससे त्याज्य उपादेय का निश्चय होता है । तिससे प्राप्यान्तर वस्तुओं में वैराग्य होता है । परमप्राय में आग्रह

परमप्राप्ये अभिनिवेशश्च भवति । अनन्तरं प्राप्यान्तरनिवृत्ते परमप्राप्यसिद्धेश्च हेतुतया-सिद्धोपायस्वीकारो भवति । अनन्तरं भगवत्प्रा-प्तिविषये त्वरा भवति । अनन्तरमहं स्मरामीत्युक्त-प्रकारेण ईश्वरस्मृतेर्विषयभूतो भवति । अनन्तरं भूतसूक्ष्मशरीरपरिष्वङ्गो भवति । अनन्तरं परमा-त्मसंसर्गो भवति । पश्चात् हार्दानुग्रहेण मार्गविशेष-प्रकाशो भवति । ततः हृदयगुहानिर्गमनं भवति ततः मूर्धन्यनाड्या निष्क्रमणं भवति । ततः अर्चि-रादिमार्गगमनं भवति । ततः आतिवाहिकसत्कारो

होता है । पीछे प्राप्यान्तरनिवृत्ति तथा प्राप्यसिद्धिका हेतु होने से सिद्धोपायस्वीकार होता है । फिर भगवत्प्राप्ति में त्वरा होती है । फिर "अहं स्मरामि मद्भक्तं" ऐसे कथित प्रकार से ईश्वर की स्मृति का विषय होता है । फिर भूतसूक्ष्मशरीर का आलिगन होता है । फिर परमात्मा का संसर्ग होता है । फिर हार्दपरमेश्वर के अनुग्रह से मार्ग-विशेष प्रकाशित होता है । फिर हृदयगुहा से निकलना होता है । फिर मूर्धन्यनाडी से निकलना होता है । फिर

भवति । ततः आवरणातिक्रमो भवति । ततः प्रकृत्यतिलङ्घनं भवति । ततो विरजास्नानं भवति । ततः सूक्ष्मशरीरविश्लेषो भवति । ततोऽपहतपाप्मत्वादिगुणगणप्रादुर्भावो भवति । अनन्तरम्-अमानवकरस्पर्शो भवति । अनन्तरं भगवत्संकल्पकल्पितदिव्यदेहप्राप्तिर्भवति । ततः अकालकाल्यदिव्यदेशप्राप्तिर्भवति । ततः आरंह्रदतटस्नानं भवति पश्चाद्दिव्यालंकारो भवति । ततः दिव्यविमानारोहणं भवति । ततस्तिल्यकान्तारप्रवेशो

अचिरादिमार्ग में गमन होता है । फिर आतिवाहिक देवों का सत्कार होता है । फिर सप्त आवरणों का लांघना होता है । फिर प्रकृति का लांघना होता है । फिर विरजा-स्नान होता है । तब सूक्ष्मशरीर का वियोग होता है । तब अपहतपाप्मत्वादि आत्मा के सब गुणों का प्रकाश होता है । तब अमानवकरों का स्पर्श होता है । फिर भगवत्संकल्प-कल्पित दिव्यदेह की प्राप्ति होती है । फिर अकालकाल्य-दिव्यदेश प्राप्ति होती है । फिर आरंह्रदतट में स्नान होता है । फिर दिव्य अलंकार होता है । फिर दिव्य-विमान में आरोहण होता है । फिर तिल्यवन में प्रवेश

भवति । ततः दिव्याप्सरःसत्कारो भवति । ततस्तिल्यगंधप्रवेशो भवति । ततो ब्रह्मगन्धप्रवेशो भवति । ततोऽप्राकृतगोपुरप्राप्तिर्भवति । ततो दिव्यनगर प्राप्तिर्भवति । ततः सूरिपरिषत्प्रत्युद्गमनं भवति । अनंतरं राजमार्गगमनं भवति । ततो ब्रह्मतेजः प्रवेशो भवति । अनन्तरं दिव्यगोपुरप्राप्तिर्भवति । ततः ब्रह्मवेश्मप्रवेशो भवति । ततो दिव्यमण्डपप्राप्तिर्भवति । ततो दिव्यपार्षदप्राप्तिर्भवति । ततः सपत्नीकसर्वेश्वरदर्शनं भवति । ततः स्तुतिप्रणामा–

होता है । फिर दिव्यप्सरों से सत्कार होता है । फिर तिल्यगंध में प्रवेश होता है फिर बृह्मगन्ध में प्रवेश होता है । फिर अप्राकृतगोपुर की प्राप्ति होती है । फिर दिव्यनगर की प्राप्ति होती है । फिर दिव्यसूरियों का आगे सङ्ग होता है । फिर राजमार्ग में गमन होता है । फिर बृह्मतेजःप्रवेश होता है । फिर दिव्यगोपुर प्राप्ति होती है । फिर बृह्मवेश्मप्रवेश होता है । फिर दिव्यमण्डपप्राप्ति होती है । फिर दिव्यपार्षदों की प्राप्ति होती है । फिर लक्ष्मीनारायण का दर्शन होता है । फिर स्तुति, प्रणाम,

ञ्जलिप्रमुखसंभ्रमानुवर्तनं भवति । ततः परमात्मसमीपप्राप्तिर्भवति । ततः पादपीठपर्यङ्कारोहणं भवति । ततो भगवदुत्सङ्गसंगो भवति । ततः आलोकनालापाद्यनुभवो भवति । ततः आलिङ्गनाद्यनुभवो भवति । ततः स्वरूपरूपगुणविग्रहाद्यनुभवो भवति । ततः अनुभवजनितप्रीतिप्रकर्षो भवति । ततो नानाविधविग्रहपरिग्रहो भवति । ततः सर्वदेशसर्वकालसर्वावस्थोचितरूपसर्वप्रकारकैङ्कर्यं भवति ।

।। इति श्रीमल्लोकाचार्य विरचितः प्रमेयशेखरः ।।

हाथ जोड़ना आदि में व्यग्रता होती है । फिर परमात्मा के समीप में जाना होता है । फिर पैरों से सिंहासन पर चढ़ता है । फिर भगवान् के गोद में बैठता है । फिर दर्शन तथा बोल चाल आदि होता है । फिर आलिंगन का सुख होता है । फिर परमात्मा के स्वरूप, रूप, गुण, विग्रहादिकों का अनुभव होता है । फिर अनुभव से प्रीति बढ़ती है । फिर अनेक प्रकार के शरीर धारण करता है । तब फिर सर्वदेश सर्वकाल सर्वअवस्थाओं में उचित कैंकर्यों में आनन्दित रहता है ।

इति श्रीलोकाचार्यस्वामिविरचित प्रमेयशेखर का भाषानुवाद संपूर्ण ।

॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥

अथ नवरत्न माला प्रारभ्यते

शरणागतः स्वात्मानं, स्वविरोधिनं देहं, देहप्रयुक्तबंधून्, संसारिणो, देवतांतराणि, श्रीवैष्णवानाचार्यं, श्रीमहालक्ष्मीं सर्वेश्वरं च कथं चिंतयेदितिचेदुच्यते ।

देहाद्व्यावृतो नित्य एक स्वरूपोऽणुर्ज्ञानानंद-

जिज्ञासु–दुस्तर संसार से निस्तार एवं देहावसान में श्रीवैकुण्ठधाम पाने के लिए भगवान के चरणों में आत्मनिवेदन करने वाले शरणागत श्रीवैष्णव अपनी आत्मा तथा आत्मस्वरूप विरोधी शरीर का, शरीरसम्बन्धियों एवं संसारी मनुष्यों का, अन्य देवों और श्रीवैष्णवों का, अपने आचार्य तथा जगन्माता महालक्ष्मी और सर्वेश्वर भगवान श्रीमन्नारायण का किस प्रकार चिन्तन (अनुसंधान) करें। इन सबको किस दृष्टि से देखें ?

आचार्य–शरणागत अपनी आत्मा को देह से पृथक्

स्वरूपो ज्ञानानंदाश्रयस्सर्वेश्वरं बिनाऽन्यत्किंचित्स्मर्तुं वक्तुमशक्तस्तस्यैवोपयुक्तस्स्वकार्येऽनधिकृतस्तत्फलश्चेति स्वात्मानं चिंतयेत् ।। १ ।।

स्वयाथात्म्यज्ञानप्रतिबंधको विपरीतज्ञानजनकश्चतुर्विंशतितत्वसमुदायात्मकोऽनित्यस्सदापरि-

---

देह की अनेक अवस्थाओं में भी उसे एक रूप में देखें। आत्मा अणु एवं ज्ञानानन्द स्वरूप है यह ज्ञानानन्दाश्रय भी है। यह आत्मा सर्वेश्वर भगवान लक्ष्मीपति को छोड़कर दूसरे का स्मरण, कीर्तन, उपासना आदि के अयोग्य तथा सर्वेश्वर के ही उपयोग में आने योग्य है। शय्यासनादि अचिद्वत् परतन्त्र तथा भगवान का ही एक मात्र शेष (अतिशयाधायक) होने के कारण इस आत्मा को अपने उत्कर्ष के लिए स्वतन्त्र रूप से कोई भी कार्य करने का अधिकार नहीं है। इस आत्मा की सभी चेष्टायें प्रभु के लिए तथा इसके मुख्य फल भी सर्वेश्वर लक्ष्मीकान्त प्रभु ही हैं। इस प्रकार शरणागत अपनी आत्मा का निरन्तर अनुसंधान करता रहे ।। १ ।।

शरणागत अपने शरीर को, आत्मज्ञान को रोकने वाला, विपरीत ज्ञान पैदा करने वाला, पृथ्वी जल, अग्नि, वायु आदि

णामशीलः कदाचिदपिज्ञानानाश्रयोऽनंतदुःख-जनकशब्दादिविषयेषु प्रवेश्यनाशकश्चेति स्वदेहं विरोधिनम् चिंतयेत् ।। २ ।।

आत्मपरमात्मानोर्ज्ञानं भगवद्विषये रुचित्वरां च नाशयित्वा देहात्माभिमानमहंकार ममकारौ कामक्रोधादींश्च जनयित्वा पापमूलतयाऽऽगत्या-नर्थंकुर्युरिति देह प्रयुक्त बन्धूंश्चितयेत् ।। ३ ।

चतुर्विंशति तत्वों का समूह, अनित्य बाल्ययौवनादि अनेक अवस्थाओं में परिणत होने वाला, सदा ही जड़ तथा ज्ञान का आश्रय न होने वाला, अनन्त दुःखों का जनक एवं शब्दादि प्राकृत विषयों में लगाकर स्वरूपनाश करने वाल। समझे और सदा ही अपने शरीर का इसी रूप में अनुसंधान करे ।।२

शरीर सम्बन्धी स्त्री, पुत्र भ्राता, माता आदि के स्नेहपाश में बँधकर मनुष्यों को आत्मा एवं परमात्मा का यथार्थ ज्ञान नहीं हो पाता, भगवद्विषय की रुचि नष्ट हो जाती, भगवद्दर्शन आदि की लालसा भी नहीं हो पाती, इतना ही नहीं देह सम्बन्धियों के द्वारा देहात्माभिमान और ममता बढ़ जाती है । काम, क्रोध, लोभ, मोहादि उत्पन्न होते हैं, पाप मूल सारे अनर्थों में प्रवृत्त हो जाता है ।

भगवदनुभव कैंकर्यविरोधिनस्संसारबर्धका
इति संसारिणश्चिंतयेत् ।। ४ ।।

अन्ना अशक्तास्सर्वेश्वरादुत्पन्नास्तद्दत्तपदा

अतः शरणागत अपने शरीर सम्बन्धियों को अनर्थ का एक अनुसन्धान करे ।। ३ ।।

स्त्री, अन्न, पानादि प्राकृत विषयों में आसक्त संसारी मनुष्यों को शरणागत भगवदनुभव कैङ्कर्य [सेवा] विरोधी तथा संसार बढ़ाने वाला समझे ।। ४ ।।

अन्य देव रुद्र, इन्द्र, वरुण, यमादि वस्तुतः सर्वप्रथम नहीं है, और न ही उनमें सर्वशक्तिमत्ता ही है, माला से सम्बन्ध होने के कारण इनमें रजोगुण, तमोगुण का उद्रेक सम्भावित है। भगवान श्रीमुख से कहते हैं--

"कामैस्तैस्तै हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्य देवताः"

कामनाओं के द्वारा जिनकी बुद्धि मारी गयी है वे ही अन्य देव की शरण जाते हैं उक्त सभी देव भगवान के द्वारा दिये गये अपने-अपने पदों पर आसीन है, किन्तु जब उनके ज्ञान का तिरोभाव हो जाता है तो वे अपने को ही सर्वेश्वर सर्वशक्तिमान मानने लग जाते हैं। काम पड़ने पर भगवान के चरणों में प्रणाम करते और काम पूरा हो जाने पर थोड़ा भी अपने स्वार्थ का भङ्ग देखकर भगवान से युद्ध करने को

अपि तेन सह विरुध्य दुर्मानिनः सर्वाधिकम्मन्या लौकिकान्भ्रामयित्वाऽनर्थकराश्च केचिदिति देवतां--तराणि चिंतयेत् ॥ ५ ॥

उद्यत होते हैं। जैसा कि कहा है-

"यया च आनम्य किरीट कोटिभिः,पादौ स्पृशन्न च्युत-मर्थ साधनम्। सिद्धार्थं एतेन विगृह्यते महानहो सुराणाञ्च तमोऽधि गाढताम" पुनः पराजित हो जाने पर "क्षन्तु प्रभोऽथार्हसि मूढचेतसो मैवं पुनर्भूत्' "देव देव जगन्नाथ जानेत्वां पुरुषोत्तमम्" इस प्रकार क्षमा याचना तथा भगवान का सर्वेश्वर के रूप में स्तुति करते हैं। अतः अन्य देवों की शक्ति ज्ञान आदि सीमित है अनन्योपासको के तथा प्रपन्नों के ध्यान या अनुसन्धान में मिश्रगुणमय होने के कारण इन देवों का कोई भी उपयोग नहीं है। यथा-

आब्रह्मस्तम्ब पर्यन्ता जगदन्तर्व्यवस्थिताः।
प्राणिनां कर्मजनितसंसारवशवर्तिनः॥
यतस्ततो न ते ध्याने ध्यानिनामुपकारकाः।
अविद्यान्तर्गतास्सर्वे ते हि संसारगोचराः॥

परावर तत्वानभिज्ञ मनुष्यों को परिमित फल प्रदान कर उन्हें भ्रम में डालकर परम पुरुषार्थ (मोक्ष) से वञ्चित

भगवज्ज्ञानस्येतरविषय वैराग्यस्य भगवद्भक्तेश्च वर्धकाश्शेषिणस्सहायभूताः प्राप्यस्य सीमाभूमयश्चेति श्रीवैष्णवांश्चिंतयेत् ॥ ६ ॥

स्वकटाक्षेण मां परिशोध्य सर्वेश्वरस्वीकाराहँ कृत्वा तच्चरणयोस्संगमय्याज्ञातज्ञापकः स्वामी सदैव दास्यं स्वीकर्ता महोपकारकश्चेति स्वाचार्यं चिंतयेत् ॥ ७ ॥

करने वाले अन्य सभी देव हैं इस दृष्टि से शरणागत अन्य देवों को देखे ॥ ५ ॥

भगवान् का यथार्थ ज्ञान कराने वाले, अन्य विषयों से वैराग्य कराने वाले, भगवद्भक्ति बढ़ाने वाले, सर्वशेषी भगवान के सहायक तथा पुरुषार्थ की सीमा भूमि (भगवत्कैंकर्य भागवत कैंकर्य पर्यन्त) ये श्रीवैष्णव हैं। अतः शरणागत श्रीवैष्णों का अनुसन्धान उक्त रीति से करे ॥ ६ ॥

जिस आचार्य ने अपनी करुणामयी दृष्टि से मुझे अत्यन्त शुद्ध बनाकर सर्वेश्वर भगवान के स्वीकार करने योग्य बनाया और मुझे मुगवान के श्रीचरणों में लगाकर अज्ञात-ज्ञापन तत्व हित पुरुषार्थ का ज्ञान कराया वे आचार्य मेरे स्वामी हैं। मैं उनकी सेवा सदा करता रहूँ वे मेरी

अस्मदपराधानीश्वरस्वातंत्र्यं च नाशयित्वा तत्कारुण्य वात्सल्यादिगुणानुद्बोध्यास्मत्पुरुषकारभूता माता स्वामिनी प्राप्या चेति महालक्ष्मीं चिंतयेत् ॥८॥

सृष्टिकाले शरीरैरिन्द्रियाणि च दत्वाऽन्तर्यामि-रूपेण सत्तां रक्षित्वाऽद्वेषाभिमुख्यसत्संगति प्रभृ-

---

सेवा को अत्र परत्र परम कृपया स्वीकार करते रहेंगे। ऐसे महान् उपकारक मेरे आचार्य हैं। इस प्रकार शरणागत अपने आचार्य का चिन्तन करे ॥ ७ ॥

अनादिकालार्जित मेरे अपराधों को देखकर सर्वस्वतन्त्र भगवान लक्ष्मीकान्त स्वतन्त्रता पूर्वक दंड देने के लिए उद्यत होते हैं। उस समय परम दयामयी माता लक्ष्मी उपदेश के द्वारा भगवान के वात्सल्य, कारुण्य, सौशील्य आदि गुणों का स्मरण कराकर उनके स्वातन्त्र्य का विस्मरण करातीं और भगवान के चरणों में मुझे निवेदन करने के लिए सदा ही पुरुषकार स्वरूप हैं। जो जगन्माता, अस्मन्माता, तथा एकमात्र स्वामिनी हैं और फलानुभव दशा में भगवान की भांति नित्य सेव्य है। शरणागत इसी प्रकार महालक्ष्मी का स्मरण करता रहे ॥ ८ ॥

सर्वेश्वर भगवान लक्ष्मीकान्त का अनुसन्धान शरणागत निम्न रीति से करे-परम दयालु भगवान अस्मदादि जीवों को प्रलय रूप महानिशा से निकाल कर उद्धार के उप-

त्यात्मगुणानुत्पादयित्वा सदाचार्येण संगमय्यास्मत्सर्वापराधान् मर्षयित्वा संसारसंबंधंनिवर्त्यार्चिरादि मार्गं परमपदं गुणानुभवं च दत्वा यावदात्मभावि-नित्यकैंकर्यं स्वीकर्ता स्वामी चेति सर्वेश्वरं चिंतयेत् ॥९

योगी शरीर, इन्द्रियादि देकर वेदादि के द्वारा ज्ञान प्रदान किये। जो भगवान सृष्टि काल में भी हम सबके अन्दर अन्तर्यामी के रूप में निवास कर सबकी सत्ता रक्षा करते रहते हैं। इतना ही नहीं किन्तु हमारे अन्दर, अद्वेष, अभिमुख्य, सत्संगति आदि आत्मगुणों को उत्पन्न कर सदाचाय का सम्बन्ध कराते और अस्मदादिकृत भगव-त्प्राप्ति विरोधी सारे पापों को क्षमा कर देहावसान में प्राप्यत्वरा उत्पन्न कर 'अहं स्मरामि मद्भक्तम्' के अनुसार स्वयं मुझे स्मरण कर संसार सम्बन्ध को दूर करके अर्चि-रादि मार्ग से ले जाकर प्रकृतिमण्डल के पार विरजास्नान कराकर प्रकृति सम्बन्ध छुड़ाकर दिव्य श्रीवैकुण्ठधाम में पहुँचा कर अपना एवं अपना गुणानुभव प्रदान कर सर्वकाल तथा सर्वावस्था में आत्मसत्तापर्यन्त नित्य कैंकर्य स्वीकार करने वाले सर्वस्वामी अस्मत्स्वामी भगवान श्रीमन्नारायण है इस प्रकार उनका सर्वदा अनुसन्धान करता रहे ॥ ९ ॥

॥ इति नवरत्नमाला समाप्ता ॥

॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥

श्रीनिगमनपड़ि ग्रन्थारम्भः

श्रीमत्कृष्ण समाह्वाय नमो यामुन सूनवे ।
यत्कटाक्षैकलक्ष्याणां सुलभः श्रीधरस्सदा ॥

श्रीमदष्टाक्षरस्य त्रीणि पदानि सन्ति ।
कानि कानि इत्यत आह ! ॐ इत्येकम् ,
नमः – इत्येकम्, नारायणाय––इत्येकम् ।

एतेषां प्रथमं पदम् एकाक्षरं प्रणवं, तस्य त्रीणि पदानि सन्ति, अकार, उकार, मकार इति । एवं त्रिपदात्मकं त्र्यक्षरात्मकं प्रणवं पदम् ।

भावार्थ––श्रीयामुनाचार्य स्वामी के पुत्र श्रीकृष्णाचारी स्वामी को नमस्कार स्वीकार हो जिनके चरणाश्रित महानुभाओं को श्रीलक्ष्मीनारायण भगवान सर्वदा सुलभ है ।

श्रीमद् अष्टाक्षर-मंत्र के तीन पद हैं । वे कौन कौन से? १ ॐ, २ नमः, ३ नारायणाय, इस प्रकार हैं । इनमें प्रथम पद, एक अक्षर का ॐ है, उसके भी तीन पद हैं––अकार

द्वितीयं नमः—इति पदं न इति मः इति। द्विविधं नमः इति पदं द्व्यक्षरात्मकं द्विपदात्मकम्।

तृतीयं नारायणाय पदं तस्य पञ्चाक्षराणि। नारपदअयन-पदाभ्यां युक्तमेतदनन्तरं चतुर्थी विभक्तिर्भवति। ततश्चायमर्थः। नारायणः सर्व-कारणं सर्वरक्षकः समस्तकल्याणगुणात्मकः सर्वशेषी श्रियःपति एवं अकारार्थः। अन्य शेषत्व निवृत्ति-र्भगवदनन्यार्हं शेषत्वम्-एवं उकारार्थः।

उकार, मकार इस तरह तीन अक्षरों के संयोग से बना हुआ पहला पद ॐ जिसे प्रणव कहते हैं।

दूसरा पद 'नमः' है, 'नमः' यह 'न' और 'म' इन दो अक्षरों वाला और दो पद वाला है।

तीसरा पद 'नारायणाय' है, यह पाँच अक्षरों से बना है, 'नार' और 'अयन' इन दो पदों से युक्त है, इसके बाद चतुर्थी विभक्ति आय पद है, इस कारण से यह अर्थ होता है कि श्रीमन् नारायण भगवान् ही सम्पूर्ण जगत के कारण व सर्वरक्षक, समस्त कल्याण गुणों से परिपूर्ण है। सबके शेषी (सब से सेवा लेने वाले) लक्ष्मीपति हैं। इस तरह से 'अकार वाच्य' भगवान का अर्थ हुआ। दूसरे का शेषत्व

आत्मनो ज्ञानानन्दत्वं ज्ञानगुणकत्वं नित्यत्वं अणुत्वं एकरूपत्वं स्मस्मैस्वयं प्रकाशत्वं प्रकृते परत्वमितिएवं मकारार्थः ।

स्वाहङ्कारममकार निवृत्तिनिवर्त्यमानस्वरूप-मत्यन्तपारतंत्र्यं पराकाष्ठा तदीय शेषत्वं परतन्त्र-त्वानुरूपमुपायत्वमेवं नमः शब्दार्थः ।

चेतनाचेतनानां नित्यत्वमेतेषां समूहत्वं समू-

छोड़कर केवल भगवान् का शेष (दास) होना ही उकार का अर्थ है ।

आत्मा-ज्ञान और आनन्द वाला, ज्ञान गुणवाला नित्य (सदा रहने वाला) अणु (अत्यन्त छोटा) सदा एक रूप से रहने वाला अपने आप अपना प्रकाश करने वाला और प्रकृति से भिन्न है इस तरह 'मकार' का अर्थ है ।

देह में आत्मबुद्धि, तदनुबन्धियों में ममत्वबुद्धि, की निवृत्ति और निवृत्त होने वाले आत्मा का स्वरूप अत्यन्त परतन्त्र है, और परतन्त्रता की सीमा तदीयशेषत्व है परतन्त्र रहने वाले जीव के उपाय केवल भगवान् ही हैं । यह 'नमः' शब्द का अर्थ है ।

हासंख्यतत्वमेवं नार शब्दार्थः ।

ईश्वरस्य धारकत्वं व्यापकत्वं नियन्तृत्वं सर्व-विधबन्धुत्वं प्राप्यत्वं सकल जगत्कारणत्वमिवंअयन शब्दार्थः ।

नित्य कैङ्कर्य प्रार्थना, आय शब्दार्थः ।

ईश्वरं त्यक्त्वा रक्षकान्तरं ज्ञान विचारवतो-हृदि अकारार्थो न लग्नः ।

चेतन तथा अचेतन दोनों वस्तु नित्य है-[जो कभी नष्ट नहीं होते] इनका समूह और समूह, भी असंख्य है, यह 'नार' पद का अर्थ है ।

ईश्वर सबको धारण करने वाले हैं, सब में व्यापक रूप से रहने वाले हैं, सबके शासक है, सब प्रकार के बन्धु है, उनमें सबका अधिकार है और सम्पूर्ण जगत के कारण है, यह 'अयन' पद का अर्थ है ।

नित्य कैंकर्य करने की प्रार्थना करना यह [आय] शब्द विभक्ति] का अर्थ है ।

१-नारायण को छोड़कर दूसरे को रक्षक समझने वाले के हृदय में [अकार] का अर्थ नहीं लगा ।

स्वस्वातन्त्र्यमस्ति चेच्चतुर्थ्यर्थो हृद्‌गतो न भवति ।

अन्यशेषत्वं कुर्वत उकारार्थो हृदि न लग्नः ।

देहात्मबुद्धेर्मकारार्थो हृदि न लग्नः ।

स्वस्वातन्त्र्यं स्वरक्षणे स्वान्व्यं श्रीवैष्णवे समबुद्धिमुपायान्तर ज्ञानविचारवतो नमः शब्दार्थो हृदि न लग्नः ।

ईश्वर शरीरभूत चेतनाचेतनेषु रागद्वेष विचारवतो नारशब्दार्थो हृदि न लग्नः ।

२– अपने को स्वतन्त्र समझने वाले के हृदय में लुप्त चतुर्थी का वाच्य शेषत्व है यह नहीं बैठा ।

३– अपने को दूसरे का शेष समझने वालों के हृदय में 'उकार' का वाच्य अवधारण [ही] है यह नहीं बैठा ।

४– देह को ही आत्मा मानने वाले के हृदय में 'मकार' का वाच्य चेतन है यह नहीं लगा ।

५– अपने को स्वतन्त्र समझने वाला, तथा अपनी रक्षा अपने आप करने वाला, श्रीवैष्णवों को अपने ही समान (बराबर) समझने वाला, उपायान्तरों में उपाय बुद्धि

अबन्धुषु बन्धुत्वं प्रतिप्रत्तिमतो हृदि, अयन शब्दार्थो न लग्नः ।

अभोग्ये शब्दादि विषये भोग्यता बुद्धिमतो हृदि आय शब्दार्थो न लग्नः ।

अकारः स्वरूपतः पितापुत्र सम्बन्धं वदति ।

अवरक्षणे, इत्यनेनधातो रक्ष्यरक्षक सम्बन्धं वदति ।

रखने वाले के हृदय में 'नमः' शब्द के वाच्य अचित्वत् पारन्त्र्य, स्व रक्षा में निवृत्ति, तदीय शेषत्व एवं परमात्मा, ही सिद्धोपाय है यह नहीं बैठा ।

ईश्वर के शरीरभूत चेतन-अचेतनादि वस्तुओं में राग-द्वेषयुक्त बुद्धि रखने वाले के हृदय में 'नार' शब्द का वाच्य समस्त चित् अचित् पदार्थ शरीर शरीरीभाव से परमात्मा का शरीर है यह नहीं बैठा ।

७- सोपाधिक बन्धुओं में बन्धुत्व बुद्धि रखने वाले के हृदय में 'अयन' शब्द का वाच्य परमात्मा ही सबका धारक होने से सर्वविध बन्धु है यह नहीं बैठा ।

अभोग्य शब्दादि विषयों में भोग्यता बुद्धि रखने वाले के हृदय में व्यक्त 'चतुर्थी'-[आय] का वाच्य शेषता अर्थात् लक्ष्मीनारायण का कैंकर्य ह यह नहीं बैडा ।

१-'अकार' स्वरूप से पिता-पुत्र के सम्बन्ध को बताता है ।

लुप्त चतुर्थी शेषशेषी सम्बन्धं वदति ।

उकारो भर्तृभार्या सम्बन्धं वदति ।

मकारो ज्ञातृज्ञेय सम्बन्धं वदति ।

नमः स्वस्वामिभाव सम्बन्धं वदति ।

नारपदं शरीरशरीरी सम्बन्धं वदति ।

अयनपदं आधाराधेय सम्बन्धं वदति ।

आयपदं भोक्तृभोग्य सम्बन्धं वदति ।

एवं श्रीमदष्टाक्षरे नवविध सम्बन्ध उक्तः ।

एवं मस्तकेऽञ्जलिः कर्त्तव्या ।

२- 'अवरक्षणे' इस धातु के अर्थ से रक्ष्य-रक्षक सम्बन्ध बतलाता हैं ।

३- लुप्त चतुर्थी शेष-शेषी सम्बन्ध को बताती है ।

४- 'उकार' भर्तृ भार्या-सम्बन्ध को बताता है ।

५- 'मकार' ज्ञातृ-ज्ञेय सम्बन्ध को बताता है ।

६ 'नमः' स्व-स्वामि सम्बन्ध को बताता है ।

७- 'नार' शब्द, शरीर-शरीरी सम्बन्ध को बताता है ।

८- 'अयन' आधार-आधेय सम्बन्ध को बताता है ।

९- 'आय' भोक्तृ-भोग्य सम्बन्ध को बताता है ।

श्रीमदष्टाक्षरस्य तात्पर्यार्थः कः ? वाक्यार्थः कः ? प्रधानार्थः कः ? अनुसन्धानार्थः कः ?

सकलवेदशास्त्र रुचिपरिगृहीतोऽयं तात्पर्यार्थः इति । प्राप्यस्वरूपनिरूपणं वाक्यार्थः ।

आत्मस्वरूप निरूपणं प्रधानार्थः । सम्बन्धानुसन्धानमनुसन्धानार्थो वदति ।

इस तरह श्रीमद् अष्टाक्षरमन्त्र में नौ प्रकार के सम्बन्ध बतलाये गये हैं । उक्त भाव को हृदय में स्मरण करते हुए शिर में अञ्जली रखनी चाहिए ।

श्रीमद् अष्टाक्षर का तात्पर्यार्थ क्या है ? वाक्यार्थ क्या है ? प्रधानार्थ क्या है ? अनुसन्धानार्थ क्या है--

सम्पूर्ण वेद शास्त्र की आज्ञा से अष्टाक्षर का परिग्रहण करना ही तात्पर्यार्थ है । प्राप्य (फल) के स्वरूप का निर्णय करना ही वाक्यार्थ है [प्राप्य भगवान के स्वरूप को बताता है ।]

आत्मस्वरूप का निर्णय करना ही प्रधानार्थ है । तदर्थ [नौ प्रकार के] सम्बन्ध का विचार करना ही अनुसन्धानार्थ है ।

॥ इति अष्टाक्षरार्थः ॥

द्वय मन्त्र

द्वयस्य वाक्यद्वयं षट्पदानि दशार्थं युक्तानि। पञ्चविंशाक्षराणि। तत्र पूर्वं वाक्यस्य पञ्चदशाक्षराणि। उत्तर वक्यस्य दशाक्षराणि।

श्रीमन्नारायण चरणौ (१) शरणं (२) प्रपद्ये (३) श्रीमते (४) नारायणाय (५) नमः (६) इति षड्पदम्।

श्रीमन्नारायणचरणौ शरणं प्रपद्ये – इति पञ्चदशाक्षराणि श्रीमते नारायणाय नमः – दशाक्षराणि।

द्वय मन्त्र

दो वाक्य होने से इसे द्वय कहते हैं द्वय मन्त्र में छै पद और दश अर्थो से युक्त पच्चीस अक्षर हैं।

'श्रीमन्नारायणचरणौ शरणं प्रपद्ये प्रथम वाक्य में १५ अक्षर हैं। 'श्रीमते नारायणाय नमः इस दूसरे वाक्य में १० अक्षर हैं।

श्रीमन्नारायणचरणौ १, शरणं २, प्रपद्ये ३, श्रीमते ४, नारायणाय ५, नमः ६, इस तरह से छै पद हैं।

एवं – श्री १, मत् २, नारायण ३, चरणौ ४, शरणं ५, प्रपद्ये ६, श्रीमते ७, नारायण ८, आय ९, नमः १०, एतानि पदानि दशार्थयुक्तानि ।

श्री–इत्यनेन भगवतोऽपि प्रत्याख्यानाशक्यां देव्याः पुरुष्कारतां प्रतिपाद्य । मत्–इति पुरुष्कारस्य नित्ययोगं वदति ।

नारायण–इति पदं श्रीमहालक्ष्मी समीरितं

'श्री [१] मत्, [२] नारायण [३] चरणौ [४] शरणं [५] प्रपद्ये [६] श्रीमते [७] नारायण [८] आय [९] नमः [१०] यह दश पद के दश अर्थ निम्नलिखित हैं ।

'श्री' इस से भगवान् भी जवाब न दे सकें ऐसी देवी की पुरुषकारता [सिफारिश] लक्ष्मीजी के पुरुष्कार को बताकर [लक्ष्मीजी की सिफारिश को टालने में असमर्थ है] 'मत्' यह शब्द पुरुषकार भूत श्रीलक्ष्मीजी को सदा भगवान् के साथ रहने का प्रतिपादन करता है ।

[नारायण] इस पद से महालक्ष्मीजी से कहे हुए चेतनों के दोषों को सुनकर भगवान् ऐसा कहते हैं कि मेरे दास ! ऐसा नहीं करते करें तो करने दो, [वात्सल्यादि गुण] का यह कार्य है]

जीवदोषं श्रुत्वा भगवानेवं वदति ममदासा एवं नकुर्युः कुर्युश्चेत्कुर्वन्तु नामेति वदति ।

चरणौ—इत्यनेन पूर्वोक्तगुणानां लक्ष्म्याश्च आश्रयणीयं विलक्षण विग्रह योगं प्रतिपाद्य । शरण-मित्यनेन, उक्तविग्रहस्यैव उपायतां प्रतिपाद्य । प्रपद्ये-इत्यनेन उपायस्वीकर्त्तुरध्यवसायं प्रतिपाद्य । श्रीमते-इत्यनेन मिथुनमेव प्राप्यमित्युक्त्वा । नारायण-इत्यनेन भगवदेव सर्वं स्वामित्वमुक्त्वा । आय-इत्यनेन तस्य चरणयोः कर्तव्यं वृत्ति विशेषमुक्त्वा ।

'चरणौ'-यह शब्द समस्त कल्याण गुण और लक्ष्मीजी का निवास स्थान, भगवान् का विलक्षण विग्रह है ऐसा बताता है । 'शरणं' इस पद से भगवान का श्रीविग्रह ही उपाय है यह प्रतिपादन किया गया । 'प्रपद्ये' इस पद से उपाय को स्वीकार करने वाले चेतन के दृढ़ विश्वास का प्रतिपादन किया । 'श्रीमते' इस पद से लक्ष्मीनारायण दोनों ही प्राप्य है । 'नारायण' इस पद से नारायण ही सबके स्वामी हैं बताकर 'आय' इस पद से भगवान् के श्रीचरणों के कैङ्कर्य को ही कर्त्तव्य बताया । 'नमः' यह पद कैङ्कर्य विरोधी

नमः इति पदं वृत्तिविरोध्यहंकार ममकार निवृत्तो-
र्वृत्ति वदति ।

अथ द्वयस्य तात्पर्यार्थः कः ? वाक्यार्थः कः ? प्रधानार्थः कः ? अनुसन्धानार्थः कः ?

आचार्यरुचिपरिगृहीतं तात्पर्यार्थः । प्रापक स्वरूप निरूपण वाक्यार्थः । मिथुन कैङ्कर्यं प्राधान्यं प्रधानार्थः । स्वदोषानुसन्धानमनुसन्धानार्थः इति द्वयमन्वाय मस्तके अञ्जलिः कर्त्तव्या ॥ २ ॥ एवं द्वय-मेतदर्थं प्रतिपाद्य समाप्तं भवति ।

अहङ्कार ममकार आदि की निवृत्ति को बतलाया ।

आगे द्वयमन्त्र का तात्पर्यार्थं क्या है ? वाक्यार्थ क्या है ? प्रधानार्थं क्या है ? अनुसन्धानार्थ क्या है ?

आचार्य की रुचि से स्वीकार किया जाता है द्वय मन्त्र का तात्पर्यार्थं है । उपाय के स्वरूप को बताना ही वाक्यार्थं है । लक्ष्मी और नारायण दोनों का कैङ्कर्य ही मुख्य है, यह प्रधानार्थं है । अपने दोषों का अनुसन्धान करना ही अनुसन्धनार्थं है ।

इस प्रकार द्वयमन्त्रार्थं का अनुसन्धान कर कृतज्ञता पूर्वक मस्तक पर हाथ जोड़ना चाहिए ।

।। चरम श्लोकः ।।

चरमश्लोकस्यार्द्धं द्वयमेकादशपदानि, द्वात्रिंशदक्षराणि सन्ति । सर्वधर्मानित्यादि पदान्याह । सर्वधर्मान् १, परित्यज्य २, माम् ३, एकं ४, शरणं ५, व्रज ६, अहं ७, त्वा ८, सर्वपापेभ्यः ९, मोक्षयिष्यामि १०, माशुचः ११, इति- एकादशपदानि ।

प्रथम पदम् इतरोपायं वदति । द्वितीयम् उपायान्तर निवृत्ति वदति । मामिति पदेन समी-

---

।। चरम श्लोक ।।

चरम श्लोक का २ भाग यानी दो हिस्से हैं, ११ पद हैं और ३२ अक्षर हैं । सर्वधर्मान् इत्यादि पद बताया जाता है । सर्वधर्मान् (१) परित्यज्य [२] माम् [३] एकं [४] शरणं [५] व्रज [६] अहं (७) त्वा [८] सर्वपापेभ्यो [९] मोक्षयिष्यामि [१०] माशुचः (११) यह एकादश पद हैं ।

पहला पद 'सर्वं धर्मान्' दूसरे उपायों को बताता है। दूसरा पद 'परित्यज्य' दूसरे उपायों से निवृत्त होने को बताता है । 'माम्' पद से अपने दिव्य मंगल विग्रह का संकेत

चीनमुक्त्वा । एकमितिपदेन उपाय नैरपेक्ष्य-मुक्त्वा । शरणं—इतिपदेन उपायतां प्रतिपाद्य । ब्रजेत्यनेन उपाय स्वीकार प्रतिपाद्य । अहमित्यनेन सर्वशक्तित्वमुक्त्वा । त्वा इत्यनेन उपाय स्वीकर्तु-रधिकारिण: स्वरूपं प्रतिपाद्य । सर्वपापेभ्य: इत्यनेन प्राप्य प्रतिबन्धकानुक्त्वा । मोक्षयिष्यामि—इत्यनेन प्राप्यप्रतिबन्धक निवृत्तिमुक्त्वा । माशुच:––इत्यनेन निर्भरत्वानुसन्धानमुक्त्वा–अञ्जलि: कर्तव्या: ।

अस्य तात्पर्यार्थ: क: ? वाक्यार्थ: क: ? प्रधा-

किया । 'एकं' पद से अन्य उपाय की निरपेक्षता बतलाया 'शरणं' इस पद से सिद्धोपाय प्रतिपादन किया 'ब्रज' पद उपाय की स्वीकारता को प्रतिपादन किया । 'अहं' इस पद से अपनी सर्वशक्तिमानता को बतलाया 'त्वा' इससे उपाय स्वीकार करने वाले अधिकारी का स्वरूप बतलाकर, सर्वपापेभ्य: इस पद से भगवत् प्राप्ति के प्रतिबन्धकों का संकेत किया । 'मोक्षयिष्यामि' इस पद से प्राप्य से प्रतिबन्धकों की निवृत्ति का संकेत किया । 'माशुच:' यह पद निर्भर होकर रहने को बताता है ।

इस प्रकार मन्त्रार्थ को हाथ जोड़ना चाहिए ।

नार्थः कः ? अनुसन्धानार्थः कः ? इत्याह । शरण्य रुचि परिगृहीतं तात्पर्यार्थः । प्रापक स्वरूप निरूपणं वाक्यार्थः । ईश्वर स्वरूपनिरूपणं प्रधानार्थः । निर्भरत्वानुसन्धानमनुसन्धानार्थः ।

चरमश्लोकाय मस्तकेऽञ्जलिः कर्तव्याः ।

इति श्रीयामुनाचार्य सूनु श्रीकृष्णसमाह्वाय स्वामि विरचितो निगमनपड़ि मन्त्रार्थ ग्रन्थः समाप्तः ।

इसका तात्पर्यार्थ क्या है ? वाक्यार्थ क्या है ? प्रधानार्थ क्या है ? अनुसन्धानार्थ क्या है ? भगवान् की रुचि से ग्रहण किया जाता है यह तत्पर्यार्थ है ।

उपाय के स्वरूप का निरूपण करना वाक्यार्थ है । ईश्वर का स्वरूप बताना ही प्रधानार्थ है । (भगवान् की कृपा पर। निर्भर होकर रहना ही अनुसन्धानार्थ है ।

इस प्रकार स्मरण करके चरममन्त्र को अञ्जलि करनी चाहिए, इति--

इस प्रकार तीनों मन्त्रों का अहर्निश अनुसन्धान करते रहना चाहिए ।

॥ इति निगमनपड़ि ग्रन्थ समाप्त ॥

पुस्तक प्राप्ति स्थान :-

सम्वत् २०५८ से नव निर्माण

स्थान :-

अनन्त धर्म सोपान श्रीरामानुज मठ

गैंडाकोट जी० नवल परासी

अ० लुम्बिनी (नेपाल)

प्राप्ति स्थान :-

श्रीतोताद्रिमठ

सन्तसागर, तुलसी नगर, अयोध्या

श्रीतोताद्रिमठ

अनन्ताश्रम (नेपाली मन्दिर)

नैमिषारण्य

श्रीतोताद्रिमठ

श्री वेंकटेश देवस्थान

क्षेत्रपुर, नारायणघाट

श्री रामानुज वेद विद्याश्रम

गेंड़ाकोट, नवलपरासी

मनीराम प्रिंटिंग प्रेस, शास्त्रीनगर, अयोध्या।